प्रतिनिधि कविताएँ
रमणिका गुप्ता

प्रतिनिधि कविताएँ
रमणिका गुप्ता

संपादक

मदन कश्यप

अक्षर शिल्पी

दिल्ली–110032

ISBN : 81-903775-4-X

© रमणिका फाउंडेशन

प्रकाशक
अक्षर शिल्पी
21, टैगोर मार्ग, केवल पार्क,
आजादपुर, दिल्ली-110033

संस्करण : 2008

मूल्य : 350.00

आवरण : उमेश शर्मा

लेजर कम्पोजिंग : उमेश लेज़र प्रिंट्स, दिल्ली

मुद्रक : रुचिका प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

कबीर की परंपरा

रमणिका गुप्ता की कविताओं से गुजरना एक ऐसे अनुभव संसार से गुजरना है, जो पढ़े-लिखे शहरी मध्य और उच्चवर्ग के लिए अजाना-अछूता ही नहीं, चौंकाने वाला भी है। रमणिका गुप्ता पिछले कोई एक दशक से दिल्ली में रह कर एक फाउण्डेशन का संचालन कर रही हैं और भारत के जनजातीय समाज तथा स्त्रियों की आवाज़ों को अपनी पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' के माध्यम से लगातार बुलंद कर रही हैं। परन्तु, उनके लेखन, विशेष रूप से उनकी कविता की पूंजी उनका वह राजनीतिक-सामाजिक संघर्ष है, जो उन्होंने धनबाद और हजारीबाग के पिछड़े औद्योगिक क्षेत्र में रह कर किया था। उन्होंने मजदूरों तथा ग्रामीणों, खासतौर पर आदिवासियों की लम्बी लड़ाई लड़ी थी। श्रमिक संगठनों में काम का उनका लम्बा अनुभव रहा है। 1960 के दशक में जब उनके पति वेदप्रकाश गुप्ता धनबाद में क्षेत्रीय श्रमायुक्त होकर गये थे, तो रमणिका जी उनके साथ एक गृहिणी के रूप में ही वहाँ गयी थीं, लेकिन शुरू से ही स्त्री-अधिकारों के प्रति सचेत और घर से विद्रोह करके शादी रचाने वाली पंजाब के प्रतिष्ठित बेदी परिवार की यह विद्रोहिणी लड़की बहुत दिनों तक साँकलों में कैद नहीं रह सकी। धनबाद में ही वे राजनीति और मजदूर आंदोलन से जुड़ गयीं। उनके इस राजनीतिक जीवन के साथ ही, सृजनात्मक जीवन की भी शुरुआत हुई। उनकी कविताएँ हमेशा ही उनकी लड़ाई का हिस्सा रही हैं। इसलिए भले ही उनमें कलातत्त्व की कमी हो, जीवन के तत्त्व इतने सघन और मूर्त हैं कि उनमें सहज ही संघर्ष के सौंदर्य को अभिलक्षित किया जा सकता है।

रमणिका गुप्ता ने अपनी राजनीति की शुरुआत कांग्रेस से की थी। सम्भव है, उस शुरुआत में रूमानियत और निजी महत्त्वाकांक्षा के तत्त्व भी रहे हों, उनकी प्रारम्भिक कविताओं में भी इसे किसी हद तक देखा जा सकता है। लेकिन एक बार जब वे संघर्ष में कूद पड़ीं तो पीछे मुड़ कर नहीं देखा, उनका उत्तरोत्तर विकास होता गया। स्थानीय कांग्रेसी नेताओं तथा श्रमसंगठनों में अंकुरित हो रही माफि या संस्कृति

के खिलाफ उन्होंने हल्ला बोल दिया और अंततः, उन्हें कांग्रेस छोड़ना पड़ा। इस बीच, श्रमिक आंदोलन के विवादों में खुद को फँसने से बचाने के लिए वे वेद प्रकाश गुप्ता ने अपना स्थानान्तरण कानपुर करा लिया। उसके बाद रमणिका ने अपना पूरा जीवन मजदूर आंदोलन को समर्पित कर दिया। साठ के दशक के अंतिम वर्षों में एक उपचुनाव में उम्मीदवार के रूप में वे हजारीबाग के मांडु क्षेत्र में गयीं तो वहीं की होकर रह गयीं। बाद में कांग्रेस ने उन्हें विधान परिषद में भेजा लेकिन माफिया संस्कृति को संरक्षण देने वाले नेताओं से उनके अन्तर्विरोध लगातार बढ़ते चले गये। आखिरकार वह सत्तर के दशक के अंतिम वर्षों में कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व वाले समाजवादी दल में आ गयीं और मांडु से ही 1980 में बिहार विधान सभा के लिए चुनी गयीं। इस बीच, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से उनका गहरा जुड़ाव हो चुका था। 1985 में वे औपचारिक रूप से माकपा में शामिल हो गयीं। इस लम्बी वैचारिक यात्रा का साक्ष्य उनकी कविताएँ देती हैं। 1988 में गम्भीर रूप से बीमार होने के बाद, मजदूर साथियों द्वारा ही हजारीबाग से लाकर एस्कॉर्ट में भर्ती करा दिये जाने के पूर्व तक वे लगातार खान मजदूरों तथा विस्थापित ग्रामीणों की लड़ाइयाँ लड़ती रहीं। उनका राजनीति कर्म एक अलग मूल्यांकन की माँग करता है, लेकिन उस विषय की इस संक्षिप्त चर्चा का अभिप्राय महज़ इतना है कि उनके सम्पूर्ण लेखन, विशेष रूप से कविताओं को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

(2)

रमणिका गुप्ता का लेखन उनके संघर्ष क्षेत्र की तरह ही विविधतापूर्ण और व्यापक है। वैचारिक लेखन और कथा साहित्य को छोड़ भी दें, तो अब तक उनके 16 कविता-संग्रह प्रकाशित हैं, जिसमें खान-खदान और आदिवासी जीवन के साथ-साथ उनके आंदोलनों और संघर्षों का भी गम्भीर दस्तावेज़ीकरण है। कहीं-कहीं उन्होंने अपनी वैचारिक ज़द्दोज़हद को भी कविता में उपस्थापित करने का उपक्रम किया है। ज़ाहिरन, ऐसे प्रयास सपाटबयानी का खतरा उठाकर ही किये जाते हैं। लेकिन रमणिका गुप्ता के बयानों में भी ताज़गी है और उनकी कविता की अन्तर्वस्तु इतनी नयी है कि उसका सामान्य विवरण भी या तो चमत्कृत करता है अथवा सीधे दिल को छूता है।

ध्यान देने की बात है कि मूलतः पंजाब की होने के बावज ूद, उन्होंने अपनी कविता में धनबाद और हजारीबाग की बोलीबानी का सृजनात्मक उपयोग किया है, जो इस क्षेत्र के मजदूर और जनजातीय समाज के प्रति उनके गहरे लगाव का द्योतक है। उनका मूल स्वर भले ही राजनीतिक है, मगर प्रेम और प्रकृति से सम्बन्धित कविताएँ भी बहुत हैं। उन्होंने दुनिया के कई प्रमुख देशों की यात्राएँ की हैं और यात्रावृत्तांत को भी अपनी कविता का उपजीव्य बनाया है। अन्तर्वस्तु के आधार पर

उनकी कविताओं को मोटे तौर पर सात खंडों में बांटा जा सकता है खान-खदान, दलित-आदिवासी, राजनीति, विचार, स्त्री-विमर्श, प्रेम और प्रकृति। परन्तु, यहाँ उनकी चयनित कविताओं को तीन खंडों में बाँटकर प्रस्तुत किया गया है। पहले खंड में वे कविताएँ हैं, जिन्हें मुखर राजनीतिक कहा जा सकता है। कवयित्री की अपनी अलग पहचान की सम्पुष्टि इन्हीं कविताओं से होती है।

पहली ही कविता एक वर्दीधारी आदिवासी की मार्मिक अभिव्यक्ति है

मैं ड्यूटी पर नहीं जाऊँगा रे मितवा
वहाँ मुझे 'काकाई देव' पर गोली चलानी पड़ेगी
सरकार नाम की प्रेतात्मा के हुक्म पर
अपनी ही औलाद को गोलियों से भून देता हूँ
मैं इस वर्दी को नहीं पहनूँगा रे मितवा **(मितवा पृ.17)**

इसी तरह आदिवासियों के जीवन तथा सोच और संघर्ष को केंद्र में रखकर उन्होंने दर्जनों कविताएँ लिखी हैं। आदिवासी प्रायः चुपचाप काम करते जाने के लिए जाने जाते हैं। वे दुःख को ही नहीं, अत्याचार को भी एक हद तक चुपचाप सहने के आदी रहे हैं, परन्तु अब उन्होंने चुप्पी तोड़ दी है। ज़ाहिर है, सबसे पहले यह विचार के स्तर पर ही टूटी है और बोलने की शुरुआत चीज़ों को पहचानने से हुई है :

अब वे बोलने लगे हैं
भूख को भोजन
प्यास को पानी
मार को लाठी कहना सीख गए हैं **(वे बोलते नहीं थे, पृ.-)**

इसी प्रकार 'मुझे तुम्हारे कालेपन पर प्यार आता है' और 'आदिवासी ने तीर क्यों चलाया?' में भी इस समुदाय के सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों की झलक मिलती है। कवयित्री की नज़र बालश्रम पर भी है और इस दृष्टि से लिखी दो मार्मिक कविताएँ 'गांठों की मुट्ठी में बंद ज़िंदगियां' तथा 'एक मरा-मरा गुमशुदा बचपन' इस संकलन में शामिल हैं।

'जंगल का संघर्ष' और 'झारखंड संघर्ष' जैसी कुछ ऐसी कविताएँ भी हैं, जिनमें मजदूर आंदोलन की गाथा को लिपिबद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। इनका कलात्मक मूल्य चाहे जो हो, लेकिन एक गहरा सामाजिक मूल्य तो है ही। रमणिका गुप्ता के लिए कविता उनकी लड़ाई का हिस्सा है, एक हथियार है, मन को मज़बूती देने वाला हथियार। वे इसी रूप में रचती हैं और अपनी रचना का अपनी राजनीति में इस्तेमाल भी करती हैं। रघुवीर सहाय ने कविता की शक्ति और सीमा को रेखांकित

करते हुए अपनी एक कविता में लिखा है 'न टूटे सत्ता का तिलिस्म/मेरे अंदर एक कायर तो टूटेगा।' रमणिका गुप्ता की ये कविताएँ इस कथन की पुष्टि करती हैं। वे कविता को संघर्ष के दौरान खोयी हुई अपनी ऊर्जा की पुनर्प्राप्ति का माध्यम बनाती हैं और कभी-कभी उन राजनीतिक विसंगतियों और विडम्बनाओं पर भी गहरी चोट करती हैं, जिनका साक्षात्कार सहज रूप से संघर्ष के दौरान होता है। इस दृष्टि से 'बहस', 'दरवाजा बंद है' और 'बहस अंदर जारी है' विशेष उल्लेखनीय है, जो एक ही घटना पर आधारित शृंखलाबद्ध कविताएँ हैं।

मजदूरों के संघर्षों के चित्रण के साथ-साथ वे लगातार कर्मकांडों और धार्मिक पाखंडों पर भी चोट करती हैं। ईश्वर की विडम्बनाओं को भी साफ शब्दों में सामने रखती हैं। उनकी वैचारिक कविताएँ उन स्थलों पर जरूर कमज़ोर होती है, जहाँ अनुभव के तत्त्व कम पड़ते हैं, परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। झारखंडी अस्मिता के संघर्ष के साथ-साथ औद्योगिक मजदूरों का राजनीतिक संघर्ष हिन्दी कविता के लिए बहुत ही नया और अनोखा विषय है। अबतक तीसरा सप्तक के कवि मदन वात्स्यायन के अलावा अन्य किसी भी हिन्दी के कवि ने इस क्षेत्र को अपनी रचना में जगह नहीं दी है। इस दृष्टि से भी रमणिका गुप्ता की इन कविताओं का महत्त्व है। उन्होंने सबसे प्राथमिक उद्योग कोयला खदान की कठिनाइयों और विसंगतियों के बीच जीवन की रूमानियत को भी पकड़ने की कोशिश की है और इस क्रम में स्थानीय बोलीबानी का सुन्दर उपयोग किया है। 'मैं कामिन कचनार हूँ' तथा 'मैं कमल की नाल हो गयी' इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। लोकभाषा के प्रयोग की दृष्टि से 'मैं अवध सरदार हूँ' और 'कोलियरी का आख्यान जान लो' भी ध्यान खींचती हैं। एक लम्बी कविता 'मजदूरायण' भी है, जिसकी आगे चर्चा करेंगे।

दूसरे खंड में प्रकृति, प्रेम और स्त्री-विमर्श की उनकी कविताओं को रखा गया है। इस क्षेत्र में भी उनका लेखन बहुत विपुल है, परन्तु इस प्रतिनिधि संग्रह की कविताओं को देखते हुए बानगी के बतौर कुछ कविताओं को ही इसमें शामिल किया जा सका है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया, उन्होंने दुनिया के कई प्रमुख देशों का भ्रमण तो किया ही है अपने देश के भीतर भी लम्बी-लम्बी यात्राएँ की हैं और अक्सर उनके वृत्तांत कविता में दर्ज किये हैं। उनके ऐसे यात्रावृत्तांतों की खूबी यह है कि वे अक्सर प्रकृति के गहरे अवलोकन की ओर अग्रसर हो जाते हैं और इस तरह हर बार सौंदर्य का एक नया द्वार खोल देते हैं। स्त्री विमर्श उनके वैचारिक और रचनात्मक संघर्ष का एक जरूरी हिस्सा रहा है। उनकी प्रेम कविताएँ भी बहुधा स्त्री-विमर्श में अंतरित हो जाती हैं, क्योंकि उनकी नज़र में स्त्री की मुक्ति और प्रेम, दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं। वे जहाँ इनके अन्तर्संबंधों को उद्घाटित करती हैं, बेहद मौलिक और कलात्मक हो जाती हैं। विवरण की

सहजता में सौंदर्य पैदा करना आसान नहीं होता। इसके लिए भाषा का जो तनाव रचना पड़ता है, वह सामान्यतया बहुत कठिन है। हालांकि रमणिका जी भाषा को लेकर उस तरह सचेत नहीं हैं, जिस तरह अपने विचारों को लेकर हैं। फिर भी उन्होंने झारखंड की लोकभाषा खोरठा के सृजनात्मक उपयोग से प्रेम और प्रकृति की अपनी कुछ कविताओं को उल्लेखनीय कलात्मक ऊँचाई दी है। वे समुद्र को पेकची के पत्ते-सा डोलता हुआ देखती हैं :

पेकची के पत्ते-सा
डोले है सागर
मन मोरा घुरी-घुरी
होले है पागल
पकल महुआ की
गंध है 'मता' रही
मोर बगिया की याद मोहे आ रही
मोर 'सहिया' की याद मोहे आ रही। **(पेकची के पत्ते सा : पृष्ठ-)**

पता नहीं हिन्दी में प्रेम और क्रांति को परस्पर विरोधी मान लेने वाली अवधारणा कब और कहाँ से आयी थी। बहुत सम्भव है कि इसके पीछे सामंती नैतिकता का कोई दबाव रहा हो, जिसमें पर्दे के पीछे सारी अनैतिकता जायज़ है। ख़ैर, यह बहस अब इसलिए अप्रासंगिक है, क्योंकि अब स्थिति बदल चुकी है और गहरे सामाजिक सरोकारों वाले कवि भी बेधड़क प्रेम कविताएँ लिख रहे हैं। इससे न केवल प्रेम कविताओं की संख्यात्मक वृद्धि हो रही है, बल्कि उसमें जीवन की तमाम हलचलों को भी जगह मिल रही है और हिंस्र समय के विरुद्ध प्रेम भी एक प्रतिरोध की तरह उपस्थित हो रहा है। रमणिका गुप्ता की प्रेम कविताओं को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। प्रेम और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर भी उनके विचार नितांत खुले हुए और काफी हद तक मौलिक हैं। वे मध्यवर्गीय दोहरेपन की शिकार कभी नहीं हुईं। उनमें तस्लीमा नसरीन की तरह सच कहने का साहस है, मगर इस साहस को बाज़ारू बना देने की चालाकी कतई नहीं। हिन्दी के पिछड़े हुए समाज में यह एक दुर्लभ स्थिति है। प्रेम कविताओं के अपने संग्रह 'पातियां प्रेम की' की भूमिका में कवयित्री ने ऐनी मेरी लिंडवर्ग की एक छोटी-सी कविता उद्धृत की है: 'मैं जिससे प्रेम करती हूँ/ चाहती हूँ/ कि/ वह मुक्त रहे/ यहाँ तक कि/ मुझसे भी।' यह एक तरह से रमणिका गुप्ता की प्रेम कविताओं का भी घोषणापत्र है। इस प्रकार, प्रेम मुक्ति का एक माध्यम बन जाता है, जबकि कई नारीवादी लेखिकाएँ इसके विरुद्ध भी हैं।

लोकभाषा और लोकसंस्कृति के गहरे संस्पर्श के चलते भी प्रेम उनके यहाँ

व्यापक अर्थ पा लेता है। रमणिका गुप्ता की ये कविताएँ अपवर्जी प्रेम की कविताएँ नहीं हैं, उसमें जीवन का संघर्ष भी अन्तर्निहित है। फैज़ से इतर रमणिका 'मुहब्बत के ग़म में तमाम ग़मों को और 'वस्ल की राहत' में तमाम राहतों को शामिल कर लेती हैं। यह एक तरह से प्रेम का समाजीकरण है, जिसे नये अर्थों में उदात्तीकरण भी कहा जा सकता है।

स्त्री मुक्ति की उनकी अवधारणा बिल्कुल मौलिक है, जिस पर न तो पुरुष-सत्ता की 'हेज़िमनी' है, न ही कोई सामानांतर नैतिक लोक खड़ा करने का पाखंड। वे प्रेम के समर्पण को भी मुक्ति से जोड़ कर देखती हैं, बशर्ते उससे स्त्री के अधिकारों का हनन नहीं हो। रमणिका गुप्ता एक बेहद सजग रचनाकार हैं और मार्क्सवाद को लेकर आग्रहशील भी। परन्तु विचारधारा का इस्तेमाल वे जड़ता तोड़ने के लिए करती हैं, नयी जड़ता गढ़ने के लिए नहीं। इसीलिए दलित, आदिवासी और बहुलतावादी संस्कृति के मसले पर वे वामपंथी संकीर्णताओं पर भी चोट करती हैं। तभी तो वे नये विमर्शों को सामने ला पाती हैं। 'मैंने तोड़ी है सदियों से सीखी चुप्पी' और 'मैं आज़ाद हुई हूँ' जैसी कविताएँ उनकी सोच को सही ढंग से उजागर करती हैं। इसी क्रम में 'बहस' तथा 'अंदर बहस जारी है' जैसी कविताओं को भी देखा जा सकता है, जिनकी चर्चा ऊपर की गयी है।

तीसरे और अंतिम खंड में तीन लम्बी कविताएँ हैं 'केदला की पहली हड़ताल', 'प्रकृति युद्धरत है' और 'मजदूरायण'। 'केदला की पहली हड़ताल' में एक कोलियरी में ठेकेदारी प्रथा के खिलाफ मजदूरों के संघर्ष का विवरण है। यह 'झारखंड-संघर्ष' की ही अगली कड़ी है। ये कविताएँ मौत को सम्बोधित करके लिखी गयी हैं। गम्भीर रूप से बीमार होने के बाद, कवयित्री ने सोचना शुरू किया कि इसके पहले मौत कब-कब उनके करीब आयी। उसे याद आया कि वह एक बार तब भी आयी थी, जब केदला की हड़ताल के दौरान ठेकेदार के लठैतों ने उसकी कार पर हमला किया था। कोयलांचल के मजदूरों के संघर्ष का बहुत ही भयावह चित्र इस कविता में उकेरा गया है। कविता हमें एक ऐसे यथार्थ से परिचित कराती है, जिसे इसके पहले हिन्दी के लिखित साहित्य में किसी रूप में दर्ज नहीं किया गया था।

'प्रकृति युद्धरत है' कविता भी इस मायने में अनूठी है कि इसमें प्रकृति के संघर्ष को आम आदमी के संघर्ष से जोड़ कर देखने का प्रयत्न किया गया है।

अंतिम कविता 'मजदूरायण' कई दृष्टि से हिन्दी की एक उल्लेखनीय कविता है। इसमें साम्प्रदायीकरण के विरुद्ध रामकथा का मजदूर के दृष्टिकोण से रचा गया एक नया विमर्श तो है ही, पंडवानी की तरह की इसकी नाटकीय शैली भी आकर्षित करती है। सबसे अधिक रेखांकन योग्य है इसकी भाषा। कवयित्री ने छत्तीसगढ़ी का बहुत ही सृजनात्मक प्रयोग किया है, जो कोलियरी क्षेत्र में प्रतिरोध का एक बड़ा प्रतीक भी है।

धनबाद-हजारीबाग के कोयलांचल में बड़ी संख्या में छत्तीसगढ़ के मजदूर काम करते हैं। खदानों के कठिन से कठिन काम में इन्हें लगाया जाता है। हर जगह इनका अपना 'धौड़ा' होता है और ये अपनी बोली-बानी तथा आन-बान के साथ एकजुट होकर रहते हैं। चूंकि शुरुआती दौर में ज्यादातर मजदूर छत्तीसगढ़ के विलासपुर जनपद से आये थे, इसलिए यहाँ सभी छत्तीसगढ़ियों को उसी तरह विलासपुरिया कहा जाता है, जिस तरह सभी दक्षिण भारतीयों को मद्रासी। कवयित्री ने इस कविता में इन्हीं विलासपुरिया मजदूरों की भाषा और भंगिमा को पकड़ने की कोशिश की है

सब गुरुजन
सब भाई मन
लिख दो मोर पेट पर
रामायण का एक ऐसन दोहा
एक ऐसन चौपाई
जे कहे
सदा सुखी रहूँ मैं
खुश रहूँ
कभी भूखा नहीं रहूँ
मैं रामायण को पूजत हूँ
भाई मन
पर पढ़त नाही हूँ **(मजदूरायण : पृष्ठ-)**

इसी तरह की एक कविता 'कोलियरी का आख्यान जान लो' भी है, जिसकी चर्चा पहले की गयी है। यह भाषा की बिल्कुल नई प्रविधि है, जिस पर विचार किया जाना चाहिए।

(3)

हिन्दी साहित्य ही नहीं, हिन्दी समाज पर भी जनपदीय संस्कृति का गहरा प्रभाव है। कहा जा सकता है, भले ही डॉ. रामविलास शर्मा ने हिन्दी जाति (क ौम) की एक सुविस्तारित अवधारणा रखी हो, हिन्दी की क ौमियत अभी बनी नहीं है। इसका एक प्रमुख कारण हिन्दी की जनपदीय संस्कृति और बोलीबानी का मज़बूत होना है। पर्याप्त संख्या में मध्यवर्ग का विकास नहीं होना भी एक कारण हो सकता है। यह अलग से विचारणीय है। बहरहाल, यह अच्छी बात है कि हिन्दी कविता जनपदीय संस्कृति और बोलीबानी को समेटती चल रही है और यह भाषा को समृद्ध करने के साथ-साथ राज और बाजार द्वारा विकसित की जा रही अभिव्यंजना की शैलियों का प्रतिपक्ष भी रच रही है।

हिन्दी का अहंग्रस्त मध्यवर्ग जनपदीय कविता की उपेक्षा करता रहा है। इसी को ध्यान में रख कर इस लेखक ने अब से कोई डेढ़ दशक पहले कविता का जनपदीय इतिहास लिखने की तरफ दारी की थी। परन्तु हिन्दी के कुछ ऐसे भी इलाके हैं, जिन्हें कायदे से किसी प्राचीन जनपद और उसकी बोलीबानी से नहीं जोड़ा जा सकता। ये पहाड़ और जंगल के इलाके हैं, जहाँ की संस्कृति के निर्माण में आदिवासियों और नृजातीय समूहों की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण रही है। यहाँ की भाषा ही नहीं, जीवनशैली, पारिस्थितिकी और पर्यावरण भी मध्यदेश के जनपदों के उस समुच्चय से भिन्न है, जिसे हिन्दी पट्टी कहते हैं। बल्कि, इनके भीतर भी भाषा के स्तर पर जनपदीय बंटवारा देखा जा सकता है, लेकिन उनमें सांस्कृतिक एकता के तत्त्व गहरे रूप से मौजू द है। हिमाचल, झारखंड और छत्तीसगढ़ तीन ऐसे राज्य हैं, जिनकी सांस्कृतिक पारिस्थितिकी को स्वर देने वाली कविता को अलग से पहचानने की ज़रूरत है। उत्तराखंड पहाड़ी राज्य होने के बावज ूद, इनसे अलग है क्योंकि वहाँ मध्यवर्ग का अभ्युदय हिन्दी के किसी भी क्षेत्र से अधिक हुआ है। वैसे झारखंड, छत्तीसगढ़ और हिमाचल में भी मध्यवर्ग का विकास हुआ है, मगर वहाँ की संस्कृति पर इसका प्रभाव निर्णायक नहीं है। वहाँ कविता की एक ऐसी धारा है, जिसे फिलहाल सबाल्टर्न कहा जा सकता है। हम इसकी सैद्धान्तिक बहसों को यहाँ नहीं उठाना चाहते, बल्कि इसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कुछ कवियों की चुनी हुई कविताओं को प्रस्तुत करना चाहते हैं। अपनी सीमाओं को देखते हुए हम केवल झारखंड क्षेत्र के पांच कवियों को प्रस्तुत करेंगे। इसकी पहली कड़ी के रूप में रमणिका गुप्ता की चुनी हुई कविताएँ पाठकों के सामने हैं। आगे हम रामदयाल मुंडा, वी.पी. केसरी, खीरूराम विद्रोही और ग्रेस कुजूर की चुनी हुई कविताओं को संकलित करने का प्रयत्न करेंगे।

हिन्दी में यह ऐसा संकटग्रस्त समय है, जब पांडित्य को प्रगतिशीलता का पर्याय बनाकर, केशव और कबीर की परम्पराओं को गड्डमड्ड करने की कोशिश की जा रही है। ऐसे में कबीर की परम्परा को अलग से रेखांकित किया जाना जरूरी है। हमारे इस उपक्रम के पीछे एक उद्देश्य यह भी है।

मदन कश्यप
ए-22, शिक्षा निकेतन, सेक्टर-5,
वसुंधरा, ग़ाजियाबाद-201012
मोबाइल : 9213255938

क्रम

1.	मितवा	17
2.	वे बोलते नहीं थे	19
3.	मुझे तुम्हारे कालेपन पर प्यार आता है	23
4.	एक शब्द	26
5.	आदिवासी ने तीर क्यों चलाया?	33
6.	मैं कमल की नाल हो गई	38
7.	मैं अवध सरदार हूँ	40
8.	कोलियरी का आख्यान जान लो	42
9.	मैं जिऊंगी	44
10.	मैं कामिन कचनार हूं	50
11.	व्यवस्था	53
12.	बगुलों की कतार	55
13.	स्पार्टकस	57
14.	भगवान तो पहले ही ग्लोबलाइज़्ड था	64
15.	मैं	66
16.	किसी ईश्वर की माया नहीं	70
17.	खुदा	72
18.	छेनी की झांझर छनकी	75
19.	गद्य से उभरती भाषा बदलाव लाई	82

20.	टुकड़ा-टुकड़ा आदमी	86
21.	छह दिसम्बर : कुछ चित्र	91
22.	स्तर	95
23.	चाहे कितना ही दावा करे हीगल	96
24.	गाँठों की मुट्ठी में बन्द जिन्दगियाँ	97
25.	एक मरा-मरा गुमशुदा बचपन	99
26.	चुप हो गई हवा	102
27.	सूरज एक जानदार तमाचा	104
28.	एक युधिष्ठिर मैक्सिको में	106
29.	भय से भगवान	109
30.	काफिले	114
31.	फिर चुप हो गयीं शताब्दियां	116
32.	बहस	119
33.	दरवाज़ा बन्द है	120
34.	बहस अन्दर जारी है	121
35.	जंगल का संघर्ष	123
36.	झारखंड संघर्ष	125
37.	केदला की पहली हड़ताल	131
38.	प्रकृति युद्धरत है	138
39.	मजदूरायण	148
40.	चेरापूंजी के नवरंग	162
41.	गोपद	164
42.	एल्पस के वक्ष पर	165
43.	लेह के पहाड़	167
44.	पीठ पर बच्चे	173
45.	आइजल	174
46.	दीमापुर से इम्फाल : एक सहयात्रा	176

47. गुमनाम स्टेशन 180
48. 'खजुराहो खजुराहो खजुराहो' 183
49. चांदनी 186
50. एनो प्रश्नानिया 188
51. कोई सदियों से कोई क्षणों में 189
52. तुमने अपनी ईजल समेट ली 192
53. बलात्कार 197
54. अकेलेपन के चमगादड़ 198
55. कतार से अलग 200
56. सन्दक-फू 202
57. प्लेटफार्म पर 206
58. बयार 208
59. हंस की कतार 209
60. तुम साथ देते तो 210
61. पेकची के पत्ते-सा 213
62. तुम्हें पाना 215
63. फेनिक्स-वे 216
64. न माना 219
65. मैं तो मृग-तृष्णा हूँ 221
66. एक सेतु 225
67. इतनी जिजीविषा 226
68. तुम्हारा समर्पण 228
69. मेरी उम्र के वीरानों में चहक उठा पक्षी 230
70. तुम पास होते तो 231
71. याद 232
72. करिया पहाड़ 233
73. तू घर नाय एलेय 235

74.	'एकले' ही रहे हम पर जिन्दगी भर	237
75.	रात एक युकलिप्टस	239
76.	कैसे गुनगुनाऊं	242
77.	आकाश के गीत	245
78.	अधलेटी	246
79.	जर्जर गाड़ी	247
80.	किसको दूं आवाज़	248
81.	प्यार के दो गीत चुप-चुप	250
82.	महक	253
83.	खूंटे	255
84.	अर्द्ध-नारीश्वर	257
85.	कीलें	260
86.	आदम की पसली	261
87.	बंदीगृह	265
88.	तब तुम क्या कर लोगे	269
89.	अभिजात और औरत	270
90.	बदलाव की कड़ी नहीं	274
91.	मैंने तोड़ी है सदियों से सीखी चुप्पी	277
92.	मैं आजाद हुई हूँ	278

मितवा

मैं ड्यूटी पर नहीं जाऊँगा रे मितवा
मैं ड्यूटी पर नहीं जाऊँगा!
वहाँ मुझे 'काकाई देव'[1] पर गोली चलानी पड़ेगी
आज जब वह वोट के विरोध में
मेरे कैम्प के पास आएगा

मैं आज काम पर नहीं जाऊँगा रे साथी
मैं आज काम पर नहीं जाऊँगा
वहाँ मुझे सड़कों पर जाती
बसों में चढ़ती
बाजार करती सीतामाय, योगमाया, गंगा, पारू को
बेंतों से पीटना पड़ेगा!

मैं इस वर्दी को नहीं पहनूँगा रे मीता
मैं इस वर्दी को नहीं पहनूंगा!
मुझे इसमें कफ न नज र आता है
इसे ढाँप कर मेरी रूह
दफना दी गई है
इसे पहन कर
मैं एक ज़िन्दा लाश बन

सरकार नाम की प्रेतात्मा के हुक़्म पर
अंधा, बहरा, गूँगा बन
अपनी ही औलाद को गोलियों से भून देता हूँ!

मैं इस वर्दी को नहीं पहनूँगा रे मीता
मैं ड्यूटी पर नहीं जाऊँगा रे मितवा
नहीं साथी, नहीं मैं काम पर नहीं जाऊँगा!

---

1. ककाई देव : पिता का बड़ा भाई

वे बोलते नहीं थे

वे बोलते नहीं थे
बिन बोले खाते
बिन बोले पीते
हंसते गाते रोते
पर वे बोलते नहीं थे

लकड़ियां काटते हल नादते
रोपनी निकोनी कटनी करते
झूम[1] सजाते
महुआ चुनते
सखुए के बीज बटोरते
कुसम-फूल बीनते
सिझाते
बांसों के जंगल के जंगल
सूपों और टोकरियों में
बिन डालते
पर वे बोलते नहीं थे

भूख को भूख
प्यास को प्यास कहना

आता नहीं था उन्हें
मार को मार
जुल्म को जुल्म कहना
नहीं था उनकी सोच के दायरे में
इसलिए
बिना कहे बिना बताए बिना जनाए
मर जाते वे थे लोग
जंगल छोड़ भाग जाते थे
या
भगा दिये जाते थे जड़ों से काटकर
ट्रकों में लाद
रेल में साज
कर्नाटक असम पंजाब
भेज दिये जाते थे वे
जरूरी सामान की तरह
पर वे बोलते नहीं थे

वे पूछते नहीं थे सवाल
वे सवाल करना जानते नहीं थे
इसलिए
उन्हें छोड़ दिया जाता था
शहरों के जंगल में
जहाँ उनका पूरा का पूरा पहाड़
नदी का पूरा का पूरा बालू
कांक्रीट के घरों में समा गया था

जहाँ उनकी नदी
पिघलती लुक्क[2] की काली परत-सी
सख़्त होकर सड़क बन गई थी
जहाँ उनकी जमीन पर
मेड़ नहीं

दीवार खड़ी हो गयी थी
भट्ठे की चिमनी ने लील ली थी फसल
विस्फोटों ने बदल दिये थे जल-स्रोत
बिरवे सूखे
धरती ऊसर
पर वे बोलते नहीं थे
सोचने की बात तो दूर

अब वे बोलने लगे हैं
भूख को भोजन
प्यास को पानी
मार को लाठी कहना सीख गये हैं

अब वे सुनने लगे हैं
सड़क के नीचे बहती
अपनी नदी की कल-कल छल-छल

वे सोचने लगे हैं
इसलिए
जड़ों की तलाश में लौटने लगे हैं

वे शहर में
लुक्क की नदी पर
रिक्शा चलाते-चलाते
अपने फेफड़ों में हुए सुराख़ का राज
जान गये हैं
इसलिए माँग रहे हैं हिसाब
लौटाने की जिद कर रहे हैं
अपने फेफड़ों की वह हवा
जो धौंकनी-सी चलती उनकी साँसों ने
शहर को

रिक्शा में ढोते-ढोते छोड़ी थी
लुक्क की काली परतों से सख्त
होकर बहती
सड़क की नदी पर

वे अब बोलने लगे हैं
भूख को भोजन
प्यास को पानी
मार को लाठी कहने लगे हैं
वे अब बोलने लगे है!

---

1. झूम : पहाड़ों में की जानेवाली खेती
2. लुक्क : कोलतार

मुझे तुम्हारे कालेपन पर प्यार आता है

मुझे तुम पर प्यार आता है
तुम्हारे रूप-रंग पर नहीं
तुम्हें देखकर मेरा बनैला प्यार
जग जाता है
जैसे तुम्हारे भीतर
जग रहा है एक आदमी
वहशत से जूझने के लिए
मुझे इस जगने पर प्यार आता है

तुम्हारे अन्दर के उस आदमी पर मुझे प्यार आता है
जो सदियों से सोया था तुम्हारे भीतर
जो पुश्तों-पीढ़ियों से खोया था तुम्हारे
अन्तरमन में
जो था परम्परा से अछूत
जगा है जो आज
एवरेस्ट की चोटी लाँघ जाने का
दम भरने लगा है
आजादी की कुलाँचें भरने लगा है
जंगलों में मुँह मारने लगा है
मुझे उन कुलाँचों पर प्यार आता है !

तुम्हारे काले खुरदरे हाथ
नहीं जगाते थे अहसास
नहीं होता था रोमाँच
लेकिन इन हाथों ने जब से
मिट्टी को लेकर
मुट्ठी बाँधी है
हर अन्याय पर चोट करने की
कसम खा ली है
वर्ण के विष को नकार
मिट्टी को मोती की
पसीने को रक्त की
प्रतिष्ठा देने की ठानी है
तब से, हाँ-हाँ तब से
इस मुट्ठी की जकड़ से
देह में झुरझुरी पैदा हो जाती है
मुझे तुम्हारी इस कसम पर प्यार आता है!

तुम काले हो
न जाने कितनी सदियों की
दासता कुँठा यातना ग्लानि
और अपमान
झुलस कर समाए हैं इस कालेपन में!
न जाने प्रकृति और भूगोल ने
कितने लावों की जलन लेकर
तुम्हें काला बनाया था कि
सदियों की बरसातें
करुणा की बाढ़ भी
न धो पायी
तुम्हारी यातना की कालिख़
जो तुम्हारे मुँह पर पुती है

पर जब तुम्हारा कालापन

शर्माता है
तो सफेद बादल चमक उठते हैं
तुम्हारे होठों के बीच
मुझे उन बादलों पर प्यार आता है

तुम भी खूब हो
तुमने अपने इस कालेपन में
जगा दिया है ऐसा विश्वास गाढ़ा
पैदा कर दी है
प्रेरणा की ऐसी जलती लपट
ऐसी चमक, ऐसी ऊष्मा
कि उसके मुकाबिल
गोरी-चिट्टी चमड़ी
गदरायी देह
सूनी, ठंडी, बेजान
लगने लगती है
मुझे तुम्हारे इस कालेपन पर प्यार आता है!

तुम्हारे काले माथे पर
चिन्ता की मोटी-काली लकीरें
जब उभर आती हैं
छू जाती हैं देह
मुर्दा देह में प्राण जग जाते हैं
शिला बन जाती है अहल्या
वहशी बन जाता है आदमी
समर्पित हो जाती हूँ मैं
धरती-सी तुम्हें
जिसने सदियों से
समर्पित होना ही सीखा था
मुझे तुम्हारी उन लकीरों पर प्यार आता है!
तुम्हारे उस कालेपन पर प्यार आता है।

एक शब्द

शब्द
रूप, आकार, अर्थ बदलते हैं
बदलते हैं युग
और
युग का इतिहास!

शब्द
जुड़े हैं व्यक्ति से
समाज से
समय से
व्यक्ति बदलता है
समाज बदलता है
शब्द बदलता है अर्थ!
भंगी से हरिजन
हरिजन से दलित होता है शब्द
शब्द
कभी आदमी से असुर बनता है
कभी 'रक्षस' से राक्षस
शब्द बन जाता है
आदमी से देवता, पैगम्बर

अवतार, भगवान
और कभी मानव से
दानव!

एक शब्द कालिदास
कालजय का बोध
एक शब्द कालिदास
परिहास का,
मूर्ख लकड़हारा
'जिस डाल पर बैठता, उसे ही काटता'
का द्योतक!

एक शब्द वाल्मीकि
युग के सत् का
कुल की मर्यादा का
पर्यायी!
राम-सीता
राम-राज की प्रतिष्ठा का
विस्तार!
मरा-मरा से राम-राम
जपने वाला
ऋषि, महर्षि, कवि!
क्रौंच-वध से आहत
संवेदना के सर्जक
राम-कथा के वाचक
का द्योतक!

एक शब्द वाल्मीकि
युग के असत् का
राजसत्ता के प्रपंच-कपट और छल भरे
षड्यंत्र का प्रतीक

शम्बूक-हन्ता
बालि-छलता
सीता-त्यक्ता
राम के स्वरूप का प्रशस्ति-गायक
झूठे गौरव का निर्माता!
मिथ्या मिथकों का सर्जक!

एक शब्द महाभारत
धर्म-युद्ध का बोध
दम्भ-दलन का उद्‌घोष!
युधिष्ठिर के सत्य का
गौरवगान
अर्जुन के शौर्य का
बखान
गुरु द्रोण की गरिमा का
प्रतिमान
एकलव्य के बलिदान का
अधिमान
कृष्ण के चक्र की
बिसात पर
उच्च-कुल, उच्च-वर्ण, उच्च-वर्ग के
स्वभिमान और दंभ का
मोहरा
युद्ध की विभीषिका का
गौरवगान
युद्ध के विनाश का
गौरवमय इतिहास!

एक शब्द महाभारत
स्वार्थ, युद्ध
आत्मघाती कलह का

द्योतक!
दम्भ की टकराहट
मूल्यों के पतन का उद्‌बोधन!

एक शब्द महाभारत
झुठलाता--
सत्य-शौर्य-बल-कौशल और
राजनीतिक बाजीगरी के मिथक
उघारता
संवेदनहीन डूहों की कतार
करता
भीष्म की प्रतिज्ञा का उपहास
बिछाता
जुए की बिसात,
जिस पर
मोहरा बनी
नंगी द्रौपदी पूछती
सवाल
''मुझे दांव पर लगाने का तुम्हें
किसने दिया अधिकार,
दो जवाब?''
पर सब मूक-बधिर!
अंधी बना दी गयी
गांधारी से
सच न देखने को
मजबूर!

एक शब्द महाभारत
गुरु-छल के
गुरु-कपट के
गौरवान्वित मिथक को

तोड़ता-मिटाता-मारता
गुरु के छल के शिकार
एकलव्य के कद को
बड़ा और बड़ा करता
गुरु बौना
शिष्य विराट नज़र आता
अर्जुन से बड़ा
कर्ण को बनाता!

एक शब्द महाभारत
त्रिकालदर्शी
सुदर्शन चक्रधारी
ईश्वर
के अन्त की
हास्यास्पद-कथा,
चमत्कार में पारंगत
अधिकार हनन में
माहिर
सच कहने वालों के लिए
'सुदर्शन' का वार
झूठ को सच करने में दक्ष
सोलह कला सम्पूर्ण कृष्ण
मारा गया जो
मामूली शिकारी के तीर से!

एक शब्द महाभारत
अँगूठा गलने के
भेद खोलता
मिथक तोड़ता!

एक शब्द गीता
मुक्ति का उद्घोष!
भाग्य का उद्बोधन
आत्मा का साक्षात्कार
स्वर्ग की सीढ़ी
राजसत्ता का सपना
आत्ममुग्धता का
सुखद मंज़र
अपनों के मरने पर
अपनों को मारने पर भी
मारे गये तो स्वर्ग
जी और जीत गये तो
राजभोग सुनिश्चित--
आश्वासन!
उच्च कुल
उच्च वर्ण
उच्च वर्ग
सब सुरक्षित!

एक शब्द गीता
वंचितों के लिए एक भद्दा-सा
मज़ाक
हास्यास्पद-उद्घोष
सन्तोष की अफीम
सब्र का जहर
भाग्य का चक्रव्यूह
निष्काम प्रेम का नशा
सतत् श्रम का फलरहित
परिणाम
परिश्रम के फल से
वंचित रखने की

साजिश
अधिकारों के समापन का
हकों के शून्यीकरण का
अमोघ-अस्त्र
श्रम का
तिरस्कार
परजीवी जमातों का
सर्जक
निठल्लों का
स्वर्ग...

आदिवासी ने तीर क्यों चलाया?

आदिवासी ने तीर क्यों चलाया?

आदिवासी ने तीर चलाया
हवा में पसर गया एक वक्तव्य
आखिर आदिवासी ने तीर क्यों चलाया?
ट्रैक्टर ड्राइवर को ही निशाना
क्यों बनाया?
ड्राइवर था सर्वहारा किसान का बेटा
तीर-सा एक प्रश्न उठा
वक्तव्य से टकराया

उठा एक बवंडर चक्करघिन्नी-सा
पुर्णियां से पलामू, पलामू से पटना
पटना से पाटन और फिर देश के हर जंगल में
गाँव के बहिष्कृत टोलों में
नगर के स्लम्स में छिड़ गई बहस
'आखिर आदिवासी ने तीर क्यों चलाया?'
प्रश्न से प्रश्न टकराए
बहस-मुबाहसे बन भिड़ गए
टोला-टोला, गाँव-गाँव

नगर-नगर गर्माने लगे
और लाल-लाल खून बिखर कर धरती पर
तीर के भेद खोलने लगा
'ड्राइवर लुटेरों का पक्षधर
लुटेरे वर्ग का हथियार
जमात एक थी
जात और मजहब में जकड़ा
वह एक गुलाम था'
माटी-सी हकीकत धरती के वक्ष पर निखर गई

लुटेरे जमींदार ने सलाह लेकर अपनी जमात से
बुलायी थी अपनी जात
जात जो उसी जमींदार पर आश्रित
लुटती थी उसी के हाथों रोज
वह गरीब, भूमिहीन वंचित जात उठ खड़ी हुई थी उस रोज़
जात और मजहब के नाम पर
चली अपनी ही जमात को जिन्दा जलाने

एक पैला धान या एक बोतल दारू के बदले
हथियायी थी जमींदार ने या उसके बाप ने
या उसके बाप के बाप ने जो ज़मीन
माँग रहे थे वापिस आदिवासी अपनी वह चुराई हुई ज़मीन
माँग रहे थे वापिस वे अपनी ठगी हुई फसलें
और सूद के पैसों का हिसाब

कौन सुनता उनका तर्क?
एक ही जमात के लोग थे आमने-सामने
जमींदार नहीं थे वे
कि चल गई गोली
तीरों की रफ्तार बढ़ गई
गोली से भी ज्यादा

2.

कचहरी के हाकिम ने
कोर्ट के कारिन्दे ने
पंचायत के मुखिया-सरपंच ने
कोर्ट में गवाही दी थी
जमींदार के पक्ष में
कोर्ट में जमींदार के वकील ने
उड़ा दिये थे परखचे सच्ची गवाही के
धुनिये-सा धुन दिया था वकील ने
रूई-सा बेदाग सच
जमीनी हकीकत की
कर दी थी बोलती बंद
गूँगा, हक्का-बक्का, गुम-सुम
हतप्रभ, चुप सरकारी वकील
कौन जाने चुप्पी की कितनी कीमत चुकाई थी जमींदार ने
न्याय के तराजू के पलड़े में झूठ का वज़नदार बटखरा
भारी पड़ गया
पारदर्शी सच पर

जहाँ न्याय अँधा हो और कानून बहरा
कोर्ट-कचहरी खड़ी हो जहाँ झूठी गवाही की नींव पर
कौन देगा न्याय?
उस दिन भी
झूठ बन गया था सच और सच झूठ
हमेशा की तरह उस दिन भी
हारा था एक मासूम और निर्दोष

3.

पर
जिस दिन कोर्ट ने सुनाया फैसला

उसी दिन
हाँ, उसी दिन
हकीकत की कलम ने लिखा था एक और फैसला
हवा की कलम से
खेत के गजट में
सरजमीन के पृष्ठों पर
'कि बहेगा खून
खून
दोनों ओर के गरीबों का
क्योंकि सरकार और उसके कारिन्दे
समाज और उसके ठेकेदार
जात और बिरादर
कोर्ट-कचहरी और उसके साक्ष्य
प्रशासन और उसकी बन्दूक
सब के सब आदी हैं झूठ के'
इकतरफा फैसला सुनने
मरने या मार दिए जाने को अभिशप्त हैं आदिवासी

होकर भी
बेटी के, बहन के बलात्कार का चाक्षुस-गवाह
गवाही के कायदे से अनजान
सच बोलता है,
केवल सच
पर गवाही तो हमेशा से झूठ पर आश्रित है
कानून केवल गवाही
सुनता है
जो उसे देनी नहीं आती

जब बोल नहीं पाता आदिवासी
जब शब्द हो जाते हैं गूंगे
जुबान हो जाती है जड़

तो उसका गुस्सा
जुबान पे नहीं
हाथों में उतर आता है
हाथ
थाम लेते हैं तीर
तीर की नोक
उसके शब्दों को, बोलों को तराशती
देती आकार
और फिर
कमान से छूटते सरसराते तीर
अन्याय के खिलाफ
शब्दों से
दर्ज कराते प्रतिवाद

मैं कमल की नाल हो गई

घर आवे मोरा मलकट्टा
रांधू झट से साग और घट्टा
करते मिल कर हँसी और ठट्ठा
दारू का पीकर अधकट्टा

मुन्ना को पलने में डालूँ
मुनिया को गोदी में घालूँ
मुंशी-मनेजर की बतिया सब
इक-इक करके मैं कह डालूँ
भूल के दिन की थकी दुपहरिया
रात के सुख की नींद मैं सूतूँ
सपने में मैं पोखरिया में
एक कमल की नाल-सी दीखूँ

सिर पे धरा झोड़ा बन जाता
एक कमल का फूल निगोड़ा
कोयले के बदले फिर उसमें
कमल-गट्टा भर जाता थोड़ा
पत्थर पे बैठे ही बैठे
खाता जिसे फिर मेरा मुन्ना

चुपके-चुपके तक-तक मोहे
मुस्काता मने-मन
मलकट्टा मोरा
शर्म के मारे देखो तो मैं
'रत्त'[1] कमल-सी
लाल हो गई
रात सपन में कामिन से मैं
लाल कमल की नाल हो गई!

---

1. रत्त : लाल(पंजाबी में रत्त शब्द लाल के लिए इस्तेमाल किया जाता है।)

मैं अवध सरदार हूँ

मैं अवध सरदार हूँ
मैं गैंता दमदार हूँ

लिखिराम मैं, मैं रामचन्दर
सोनसाय मैं, मैं मछन्दर
मेहतर-सेहत्तर छत्तर-बुन्दा
गेन्दा-बिन्दा छिन्दा-कुन्दा
मैं बीरबल रजवार हूँ
मैं बेलचा किरदार हूँ
मैं अवध सरदार हूँ

बुधना-सुधना, जोधन-सोधन
बलवा-तलवा, मधवा-डोमन
रामबरण-गुन्नी और चँदा
धनसाय-जुगला टोपनो मुण्डा
कोयले की लशकार हूँ
मैं सब्बल कद्दार हूँ
मैं अवध सरदार हूँ

बिन्देश्वर हूँ मैं, रामपति भी
रामकिशुन मैं, किशुन राम भी

जुम्मन-झम्मन छम्मन-छग्गन
रथुवा-नथुवा, सुक्खन-जग्गन
बिरसा का हथियार हूँ
मेहनत का अगार हूँ
मैं अवध सरदार हूँ

कोयला काटूँ, काटँ पत्थर
आखिर तो मैं हूँ कोल-कट्टर
मलकट्टा खटनहार हूँ
मेहनतकश कमकार हूँ
मैं अवध सरदार हूँ

सब्बल हूँ मैं, मैं हूँ हैम्मर
चट्टानों से टक्कर लेकर
पत्थर को धुनधुन कर उठता
धूल का गुब्बार हूँ
मैं गैंते का वार हूँ
कोयले का अंगार हूँ
मैं अवध सरदार हूँ

गैंता हूँ मैं बेलचा
कोड़कोड़ कर खोदता
उलट-पुलट उलीचता
झोड़े पर झोड़ा धर-धर के
डोली-वैगन बोझता
बंकर खाली करने वाला
डम्फर तेज़-तर्रार हूँ
डोली की रफ तार हूँ
मैं अवध सरदार हूँ!

कोलियरी का आख्यान जान लो

सुनो भई-मन
सुनो दई-मन
सुनो जनी-मन
और गुणी-मन
सुनो साधो और
सुनो सन्त-मन
पी.ओ. मनेजर और मुंशी की सांठ-गांठ से
चौपट भई जो हीरक-नगरी
काले हीरे की लक-दक नगरी का
आधा-साधा हाल जान लो
कोलियरी का आख्यान जान लो

घाटे से पट गई खदानें
बार्बादी की चाल जान लो
घर बैठे चढ़ जाये हाजरी
'इन्टक' का अरमान जान लो
कोलियरी का भई हाल जान लो

बिना खटे कमनी चढ़ जाये
कोढ़िया का फरमान जान लो

खटने वाला बनवास झेलता
निखट्टू करता राज जान लो
आधा-साधा घूस में दे कर
गाड़ी 'पाउता' राम जान लो
सीता भी कुछ ले-दे के ही
अरखा धरती हाल जान लो
कोलियरी का आख्यान जान लो

कोलियरी का भट्ठा बैठे या
मजदूरन की छंटनी हो जावे
अपनी-अपनी जेब भरें सब
अपनी-अपनी डफ ली बजावें
नापी से फ ाजिल कोयला
चुन-चुन भरते लोग जान लो
कोलियरी का आख्यान जान लो

चाहे कमनी-बिल घट जावे
कचिया काटें पकिया पावें
टटका पैसा हाथ में आवे
रहें मस्त खुशहाल जान लो
कोलियरी का आख्यान जान लो

आने-आने लोग के आपन
दमदा बतावे सास जान लो
नाइन फोर की नौकरी खातर
बाप के मारे पूत जान लो
कोलियरी की लंका में आके
राम बने रवण्णा साधो!
सीता को हरने की खातर
हनुमान लगाते घात जान लो
कोलियरी का आख्यान जान लो।

मैं जिऊँगी

भगवान से मुझे सरोकार नहीं
खुदा की मुझे दरकार नहीं
चमत्कारिक शक्तियों में मेरा एतबार नहीं
इन पर न मुझे आस्था है, न विश्वास

आज जब मौत का साया
ढंकता जा रहा है मुझे
आज जब दर्द
'जम' के हाथों की तरह नोच रहा है देह
घाव रिस रहा है, टूटते जा रहे है अंग
साँसें मंद पड़तीं, प्राण घुटते जा रहे हैं
मौत के खिलाफ जूझती मेरी इच्छाशक्ति भी रही है टूट
तो किससे शक्ति माँगूं?
किससे?

मुझे शक्ति दो मजदूर साथियो
मुझे शक्ति दो कामरेड सीता
कामरेड सियामती बाई
लिखी राम! ललकारो एक बार जोर से

ताकि
दर्द के जम काँप जाएँ

अवध सरदार!
संगठन का बोध जगाओ
अपनी ठहरी धीमी आवाज़ से समझाओ
कि इस मौत से लड़ना जरूरी है
आवाज़ लगाओ
ताकि
मेरी इच्छाशक्ति जग जाए
जूझ जाए मौत से

जुम्मन! कहाँ है तू?
'हड़ताली' की माँ से कहो
वह तलवार मुझे दे दे
जिससे तुमने अकेले लड़कर
शर्मा के गुण्डों को खदेड़ा था
भले लहू-लुहान हो गया था तू
वह साहस मुझे दे दे
ताकि मौत के इन हमलावारों को
पछाड़ सकूं मैं

सियामती बाई!
जानती हूँ तेरी रीढ़ की हड्डी में
चोट लगी है खदान में गिर कर
तुझे झुकने में पीड़ा होती है
फिर भी तू खटती है
चूंकि खटना जरूरी है
मुंशी बाबू तुझे नहीं बख्शेगा
नौकरशाही लालफीतों का मुंशी
तेरी चोट-खाई रीढ़ को

नहीं पहचानता
वह तो जानता है केवल
तूने कितना झोड़ा कोयला उठाया
कितना झोड़ा गिराया
तू कराहती है फिर भी खटती है
झुकती नहीं टूटती नहीं तू
तू ही मुझे शक्ति दे सियामती बाई कि
मैं तेरी चोट खाई रीढ़ की तरह
बीमार-क्षणों को नकार दूँ

देखो! मैं गिरी जा रही हूँ
मौत की पोखरी में
बुलाओ रथू को
वह पोखरी के किनारे सब्बल गाड़ कर
खड़ा हो जाये
लोक ले मुझे
अपने कन्धों पर लाद
ले आए टोंगरी के ऊपर
सुला दे मुझे उन्हीं पत्थरों पर
जहाँ काम करते वक्त
तुम लोग सुलाती हो अपने बच्चों को
मुझे शक्ति दे सियामती कि
मैं उठ कर खड़ी हो पाऊँ
एक नये सपने के लिए
फिर से जूझने लग जाऊँ
तुम लोगों के साथ

सीता! हाँ-हाँ सीता,
तू मुझे शक्ति दे
तू खदान में खटती है
मर्द ने छोड़ दिया है तुझे

तू उसके बच्चे पालती है
पीठ पर बच्चे को बाँध
बोझती है कोयला
पर थकती नहीं, लड़ती है
वैगन के नीचे रेल की पटरी पर
तेरा बच्चा सोया रहता है
पटरी के पत्थर हैं उसके खिलौने
मेहनत ने तेरी रीढ़ को है लोहे का बनाया
और सहनशक्ति को इस्पात का
अपनी यह सहनशक्ति
वह संकल्प मुझे दे दे न सीता
कि मौत के साये
हड़क कर भाग जायें

सीता!
तुम वह सीता नहीं
जो राम के त्यागने पर
धरती में समा गई थी
तू प्यारी भी नहीं है सीता
जिसका मर्द द्रोपदी की तरह
उसे जुए में हार गया
तू तो एक नई सीता है
जो खटती है
जो टांगी लेकर चल देती है
अपने बच्चे को उसके बाप का नाम दिलाने
जब बाप नाम देने से मुकर जाता है
अपनी इस टांगी की पैनी धार
मुझे दे दे न सीता
कि तेज धार से
मौत की लटकती तलवार को काट दूं
तेरे झोड़े से भर-भर कर

बीमारी के कीड़ों को
रिसते घावों को
पीड़ा के ढेरों को
दूर फेक आऊँ गड्ढों में
या पत्थर-मिट्टी के ऊँचे ढूहों पर

मुझे शक्ति दे सीता
मुझे संकल्प दे सियामती
इच्छाशक्ति के बंद दरवाज़े पर दस्तक दे कि
मैं उड़ने का सपना फिर से पाल लूं

मैं किसी और के द्वार नहीं जा सकती
तुम ही से
हाँ! हाँ! तुम सब से
माँग सकती हूँ शक्ति

सुनो!
तुम सियामती और तुम रथु
और तुम सब
तुम सब मुझे माँ कहते हो
आज मुझे एक माँ की जरूरत है
सीता, सियामती, लीलमुनी
चम्पा, गुरबारिन, रेबती
तुम सब माँ बन कर
मेरे कमज़ोर मन में
ममता की शक्ति भर दो
मैं स्वयं अपनी माँ बनने की
क्षमता हासिल कर लूँगी

तुम लोगों की याद ने मुझे
जगा दिया है सीता! सियामती!

तुम लोगों के अटूट विश्वास ने
मेरी मरती देह में फूँक दिये हैं प्राण
मैं जिऊँगी सीता
मैं जिऊँगी सियामती
मैं जिऊँगी साथियो
जिऊँगी फिर से संघर्ष करने के लिए
फिर से
एक नया निज़ाम बनाने के लिए!

मैं कामिन कचनार हूँ

मैं गोरी-कारी नार हूँ
मैं कामिन कचनार हूँ
मोलामति मैं, बसमतिया मैं
नीलमणि और रसमतिया मैं
धरती का जो अन्तर भेदे
उस गैंते की मार हूँ
मैं कामिन कचनार हूँ

कौसल्या मैं, सावित्री मैं
कबूतरी और बुतरी भी मैं
पत्थर से जो आग निकाले
उस सब्बल की धार हूँ
मैं कामिन कचनार हूँ

फूलमणि मैं, सरसुतिया मैं
मंगली, संगली, जसमतिया मैं
घर-घर को जो चकमक कर दे
उस बिजुरी की तार हूँ
मैं कामिन कचनार हूँ

आयोहोड़ मैं, मंझियाइन मैं
मुण्डा हूँ मैं, महतोआइन मैं
सटसट जंगल मुण्डी काटे
वह टाँगी की धार हूँ
मैं कामिन कचनार हूँ

मलकट्टे जब कोयला काटें
झोड़ा ले ले कर हम भागें
हाथे-हाथ बदलते झोड़े
आँखे-आँख सब जुगत जोड़ें
पांव में इक थाप सुबकती
'तारे नारे, तारे नारे' तान हूँ
मैं कामिन कचनार हूँ

लीड-लिफ्ट जितना भी होवे
मिट्टी पत्थर दम भर ढोवें
बड़का बोल्डर गर मिल जावे
हमरे हाथों बच न पावे
पीट-पीट छोटा कर दे जो
उस हैम्मर की धाप हूँ
मैं कामिन कचनार हूँ

खूँटा-गर्डर टान रहे जब
खून-पसीना गार रहे जब
एड़ी-चोटी जोर लगे जब
'बप्पा' 'मैय्या' टेर रहे सब
मेहनत के धक्कों से निकली
'हैय्या-हैय्या' ताल हूँ
मैं कामिन कचनार हूँ

खोल खोल सब ट्रक के डाले

कोयले पे कोयला हम लादें
ऊँच गगन में आती-जाती
कोयला भर-भर कर ले जाती
सौ-सौ चक्कर भरने वाली
डोली तेज़ रफ्तार हूँ
मैं कामिन कचनार हूँ
गोरी कारी नार हूँ!

नोट : 13.8.86 को बम्बई मेल से सिंगरौली के कोयला मजदूरों के केस के लिए जबलपुर जाते हुए।

व्यवस्था

व्यवस्था मुझे सैल्यूट बजाती है
अपने सर पर लटकी
उसकी तलवार की रस्सी
मैं
काटना भूल जाता हूँ
व्यवस्था-मुस्कुराती है
मैं सैकड़ों-हजारों की भीड़ ले
व्यवस्था के अड्डे पर
पहुँचता हूँ धड़धड़ाता
नारे लगाता
व्यवस्था के खिलाफ
मुट्ठियाँ तानता
व्यवस्था मेरी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाती है
कमरे में मुझे, केवल मुझे
स्नेह से ले जाती है
कुर्सी देती है

मैं बैठ जाता हूँ उस पर
झिझकते-झिझकते

चाय की प्याली
नमकीन, बिस्किट
मिष्टी में लिपटा जहर
बड़े स्नेह से परोसती है व्यवस्था
जिसे मैं निगल जाता हूँ

मेरी जबान उलट कर
चाटने लगती है नमकीन तलुवे
विष मेरे कानों में भर जाता है
मैं बहरा हो जाता हूँ
गूंगा हो जाता हूँ
मिष्टी के रस से
भूल जाता हूँ नारे लगाना
भकुआ-सा ताकने लगता हूँ
व्यवस्था की मुस्कराहट पर लट्टू हो कर
भूल जाता हूँ
पीड़ा से छटपटाना सैकड़ों हजारों की
भीड़ का

फिर
व्यवस्था छोड़ देती है मुझे
भीड़ में लाकर खड़ा कर देती है
तब तक
या तो भीड़ बिखर गयी होती है
या मैं भीड़ से निकल जाने का रास्ता
खोजता
गुम हो जाता हूँ!

बगुलों की कतार

झक-झक सफेद
बगुलों की कतार
अरे नहीं, ये तो हैं
'टिकट' के उम्मीदवार
एक पाँव पर खड़े-खड़े
कर रहे दरबार
पार्टी-पोखर के कगार

ताक में बैठे
लगाए हुए घात
कब मिले शिकार?
खोलें अपनी चोंच
निगलें समूचा, बाजी लें मार
बिना लिये डकार

सत्ता के स्वार्थी
एक टिकट के प्रार्थी
फिट करते गोटी
बिठाते जुगाड़

मिल गया नम्बर
तो
खुल जायेगी इनकी
जीवन भर की लाटरी

देश जाये जहन्नुम में
बोल-बम तरन्नुम में
जुग-जुग जीये भारत में
मुल्ला-पण्डा-पादरी
खण्ड-खण्ड भारती

टूटे तो टूटे
बंटे तो बंटे
गुलामी की फाँस
या कर्ज का फन्दा
गले में देश के
पड़े तो पड़े

कुर्सी सलामत
सत्ता सदारत
खण्ड-खण्ड भारत
होवे तो होवे

कुर्सी की सलामती
सत्ता की वापसी
वोटों की चौकसी
बक्से की चाकरी

यही एक मूल-मन्त्र
जपते दिन रात्रि
पार्टी करपात्री
गांधी के नाम पर
सुबह-शाम आरती
टिकट के प्रार्थी!

स्पार्टकस

मैं अगर तुम्हें कहूँ
कि ब्राह्मणत्व और मनुवाद का
चक्रव्यूह तोड़ने के लिए
तुम बनो अभिमन्यु
तो गलत होगा
वह तो दो अभिजातों की लड़ाई थी
जिसमें तुम नहीं थे कहीं
तुम एकलव्य के पीछे खड़े कहीं
केवल दृष्टा थे उस विध्वंस के
तुम्हारी भागीदारी नहीं थी
न विजय में, न पराजय में
सृजन की तो कोई बात ही नहीं थी वहाँ
हाँ, मोक्ष की बात भले थी
जो तुम्हारे लिए वर्जित था
इसलिए बेमानी था
तुम्हारे जन्म या मरण के कोई मायने नहीं थे कभी
तुम निष्काम सेवा करने के
दायीदार रहे
फल और स्वर्ग की कामना
तुम्हारे हक के दायरे से बाहर रही

इसलिए 'हक' का अर्थ भी नहीं जाना था तुमने
नहीं कहूँगी मैं कि तुम बनो अभिमन्यु
अभिजातों की जमात से होड़ लगाओ
या एकलव्य की तरह
गुरु से धोखा खा जाओ
नहीं नाम दूँगी इस ब्राह्मणत्व को
चक्रव्यूह का
चूंकि इसे युद्ध से खत्म नहीं किया जा सकता
इसे खत्म करने के लिए जरूरी है
इन्कलाब क्रान्ति विद्रोह
सोच का विकास और सतत् संघर्ष
इसलिए
क्या तुम स्पार्टकस बनने को
तैयार हो
मनु से लड़ने के लिए

स्पार्टकस एक ग्लैडिएटर
ग्लैडिएटर
एक गुलाम
खून देखकर उत्तेजित, उद्विग्न
रोमाँचित और एक्साइट होने वालों की
खुशी के लिए
बाहों में, हाथों में, जाँघों में
छुरियाँ बाँधकर
आपस में अपने साथियों से लड़कर
खूनो-खून हो
मरने के लिए मजबूर
नवाबों के अखाड़े का
दो टाँग वाला आदमी
एक प्रशिक्षित मुर्गा

तालियों की गड़गड़ाहट में
बियर की चुस्कियों तले
रूमानी मुस्कान के बीच
अपनी मौत
निश्चित मौत के नज़दीक पहुँचता
लेकिन जो समझ गया था
जीने का महत्त्व
समझ गया था आज़ादी का अर्थ
मुक्ति का मूल्य
एक ऐसे समाज के सपने को
जमीन पर उतारने के लिए
जहाँ न दास होंगे, न गुलाम
सब होंगे समान
साधरण इनसान
साधरण जरूरत वाले
जहाँ कुछ भी न होगा विशेष
न अभिजन, न खास
कोई नस्ल नहीं
कोई जाति नहीं
कोई रंग नहीं
छोटी-छोटी जरूरतों वाला
बड़ा-बड़ा बहुत बड़ा समाज
जिसके लिए
रोम से टकराने की
जुर्रत की उसने

रोम भी मनु की तरह
दासों को
आदमी नहीं
इनसान नहीं
जानवर समझता

दास रखना अपना
जन्मसिद्ध अधिकार मानता
अभिजात का दम्भ पालता
रोम के सीमा विस्तार को
अधिकार मानता
आज़ादी की रक्षा का अर्थ
उनके लिए
दूसरों को अपने अधीन लाने के
अधिकार की रक्षा
स्पार्टकस टकराया उस रोम से!

स्पार्टकस
रोमनों की स्त्रियों के सपने में छाया
स्पार्टकस रोमनों की बहसों का
विषय
उनकी नींद ले भागा
उनके माथे में खिंची
घनी चिन्ता-रेखाओं में उग आया
उनकी भृकुटियों में तना
और मुस्कराता रहा अन्त तक
बिन बोले
मुस्कान और चुप्पी के आदेश देता

बोटी-बोटी कटा
पर पकड़ाया नहीं
स्पार्टकस स्पार्टकस
रोम का ज़र्रा-ज़र्रा थर्रा गया

रोम थर्रा गया
स्पार्टकस के उन सपनों से
जिसने हजारों गुलामों के सीने में

भर दिये आज़ादी के सपने
जिसने जगा दी ऐसी भूख
जिसे पेट में पाले
सीने में भरे
लटक गए हजारों गुलाम
टिकटिकी पर
कीलों से ठुके-ठुके
तीन-तीन दिनों तक
बिना आह भरे करते रहे
मौत का इन्तज़ार
तिल-तिल कर आती
मौत की राह तकते रहे
सूली से डरकर
आज़ादी की राह
मुक्ति का सपना और अपना निर्णय
न बदला, न धिक्कारा, न दुत्कारा
ना ही दिया उलाहना संघर्ष की राह को
जिसका निश्चित अन्त था
टिकटिकी

संघर्ष
जिसने शोषण से मुक्ति पाने के लिए
नस्ल-जाति-रंग के भेद
देश की हदें
तोड़ कर
एक बड़ी जमात में बदल दिया
एक भीड़ को
भीड़
जो भेड़ों की तरह हाँकी जाती
रेबड़ की तरह
बाड़ों में रखी

बाड़ों में पाली
बाड़ों में मारी जाती
मूक, बिन-बोले
कई नस्लों वाली
कई रंगों वाली
कई देशों वाली
कई देशों की भीड़
भेड़-सी!

स्पार्टकस ने
बनाया इस भीड़ का मन
जो मन से अपने को
मुक्त मान
जमात बन गयी

चल पड़ी जमात
ले अपने पुश्तैनी हथियार
गुलामी का 'जुआ' काटने
मुक्त मौन इशारों से संचालित
आँखों ही आँखों में पढ़ती अगला आदेश
मिटे भाषा के भेद
मन की बोली के तार
एक साथ ठनके
दुश्मन के खिलाफ ब्यूह रचती
आगे बढ़ती
विभिन्न भाषा-भाषी
एक मन, एक मत
एक संकल्प
एक लक्षय वाली जमात

रोम जीतकर भी
हारा-सा
डरा-सा
टूट-टूट गया
मर कर भी जीत गया स्पार्टकस

क्या तुम बनोगे स्पार्टकस?
मिटाने मनु का मिथक
रचोगे खुद ही चक्रव्यूह?

भगवान तो पहले ही ग्लोबलाइज़्ड था

भगवान और व्यापार
दोनों का एक ही अन्दाज है
एक
मनुष्य के दिमाग पर काबिज हो
आस्था-विश्वास का ब्याज
पीढ़ी-दर-पीढ़ी
बटोरता है

दूसरा
आदमी की देह पर काबिज हो
मेहनत-मशक्कत की जिन्दगी मुनाफे में
सदी-दर-सदी
वसूलता है

अब तो व्यापार भी वैश्वीकरण की बात
करने लगा है
भगवान तो पहले ही ग्लोबलाइज़्ड था
बस फ र्क सिर्फ अन्दाज़ का था

भगवान अलग-अलग धर्मों में बँटा

फैलता-बिकता
मज हब की दुकानों में

व्यापार
अलग-अलग कम्पनियों में रजिस्टर हो
बढ़ता-फैलता
मंडियों में
बेचता है आदमी
खरीदता है आदमी

पर
मकसद एक ही दोनों का
आदमी को आदमी न रहने देना
टुकड़े-टुकड़े कर देना
आदमी को बाँट देना
आदमी को
माल बना देना!

मैं

मैंने
जब भी
द्वार खटखटाया,
उसे बंद पाया

कविता के अन्तर-पटों
पर दस्तक दी,
एकाएक द्वार खुला
कविता झाँकी
किन्तु एक
क्षीण फीकी मुस्कान से
मुँह मोड़कर
उसने द्वार बन्द कर लिया
शायद मैं अभी
इस योग्य नहीं कि
वहाँ तक पहुँच पाऊँ!

मैंने
गीतों के गेह का
परदा उठाया

सभी स्वर
खिलखिला कर
हँस पड़े
मैंने घबराकर
परदा गिरा दिया
उपहास के
उन कहकहों को
सुनते ही

शायद मैं अभी
इस योग्य नहीं
कि वहाँ तक भी पहुँच पाऊँ!

प्रकृति के वक्ष पर
मैंने रंग-बिरंगे चित्र देखे
तूलिका उठा ली
चित्रपटी पर रेखायें आँकी
पर एक कुरूप-सा धब्बा उग आया
और
मुझपर हँसने लगा
शायद मुझे
तूलिका ठीक ढंग से
पकड़ने ही नहीं आई

हताश-निराश
मैंने राजनीति के
शीशमहल के
मुख्य द्वार पर
एक ढेला दे मारा
द्वार का शीशा टूटा
और एक ही

चेहरे वाले
सहस्र-मुख
हँस उठे
मुझे बुलाने लगे
आओ, आओ!
मैं घबरा उठी
और भागी वहाँ से

शायद मुझे फाँसने का
यह एक अच्छा ढंग था
यह भी क्या विडंबना है
जहाँ द्वार बंद, वहाँ जाने की इच्छा
और जहाँ कोई बुलाता है
वहाँ संशय और भय जाने नहीं देते!
क्या करूँ?
विमूढ़ हो देखा मैंने
सामने थी एक पगडंडी
न कोई स्वागत करने वाला
ना दुतकारने वाला
राह में काँटे मिले तो फूल भी
मैं चलती रही उस पर
काँटे चुभते रहे
मैं फूल बीनती रही
उसी राह पर कविता-मंदिर
गीत-गेह
प्रकृति-चित्रपटी
राजनीति का शीशमहल
सभी के द्वार खुले थे!

ऊपर दूर एक चोटी पर
प्रकाश उग रहा था

असंख्य असहाय
गरीब
टकटकी लगाए ताक रहे थे
कि मैं वहाँ से उनके लिए
क्या लाती हूँ
सभी कुछ था
पाने के लिए
संकल्प चाहिए था बस
हौसला और संघर्ष
चाहिए था बस
धीरज बँधा
कविता के भाव मन में गूँज उठे
गीतों के स्वर कण्ठ में मचलने लगे
चित्रों के रंग तूलिका में रच गये
रम गये
भर गए
और
राजनीति का चाणक्य
मेरे मस्तिष्क में बैठ गया!

किसी ईश्वर की माया नहीं

मैं
वस्तु!
किसी की नहीं
स्वयं अपनी ही कल्पना
मैं एक यथार्थ
वस्तु की वंशज
कोई भ्रम नहीं

मैं
विकास की प्रक्रिया
यात्रा का बढ़ता कदम
कदमों की गति
गति की ऊर्जा
उड़ती इच्छा के पंख लगा

मैं चाह
जगती निरंतर सपनों-सी

मैं विचार
मैं विवेक

जो
सदैव मन और मस्तिष्क को मथता

मेरी देह
द्वंद्व की परिणिति
देह
जिसमें बसते सारी सृष्टि के
सपने
जिसमें रमती स्वयं
प्रकृति
जिसमें विकास और विध्वंस के
बीज
क्रीड़ारत एक संग

मैं मनुष्य
प्रकृति का प्रतिनिधि
कल्पना का रथी
वस्तु की विकास-यात्रा का
एक पड़ाव
किसी ईश्वर की माया नहीं।

खुदा

मैंने अपनी सुगंध से प्रेम
मनु की मैल से घृणा
दया-ममता से सौंदर्य
भय और स्वार्थ से कुरूपता
समेट कर एक बुत गढ़ दिया

खून-मज्जा-पसीने से
लथ-पथ होकर!
मैंने पहले
इसे गुफा में सजाया
फिर
खुले आकाश के नीचे
चौराहों पर
खड़ा कर दिया!

मैंने उसके लिए इज़ाद किये
घर-आँगन, गिरजे-मंदिर।
मैंने उसे पत्थरों से गढ़ा पहले
फिर लोहे, ताँबे, पीतल
सोने और चाँदी में ढाला

मैंने उसे नाम दिया
शब्दों में उसे गाया
उसे रूप दिया
आलेखों में लिखा
किताबों में भरा

मैं भूल गया
मैंने उसे गढ़ा
डरने और डराने के लिए
रीझने और रिझाने के लिए
स्व और समष्टि पर काबू पाने
अपने अच्छे-बुरे कर्मों की जिम्मेदारी
उसके सिर मढ़ कर
खुद को गुनाहों से बचाने के लिए

एक दिन
उसमें हरकत हुई!
वह जिंदा हो गया
फिर उतर गया मेरे मन में
घुल गया तन में
बोला
'मैंने तुम्हें जन्मा तुम मेरी कृति'
मैं विस्मित
'धत् मैंने गढ़ा तुम्हें' मैंने कहा!
वह चिल्लाया कड़क कर
तेवर बदल कर
'बस याद रख इतना
मैंने गढ़ा तुम्हें
यही तुम्हारी इति'

उसने मेरे तर्क-विवेक और दिमाग़ पर
विश्वास की कीलें
ठोक दीं
मन पर आस्था की नकेल डाल दी
और मैं
जिसने खुदा को गढ़ा
अपने को उसकी औलाद मान कर
बन्धुआ-सा सृष्टि का खेत
धर्म के हलों से जोत कर
दुनिया की लहलहाती फसल को
भाग्य के महाजन को
सौंप
आत्मा की बहियों में
फँसता चला गया
और फँसता चला जा रहा हूँ

न जाने
खुदा के खिलाफ
कब विद्रोह होगा!

छेनी की झाँझर छनकी

मर्यादा की नहीं होती कोई भी सीमा
जो मान ली
वह भी मर्यादा
जो टूट जाए वह भी मर्यादा
दोनों में कोई फ र्क नहीं होता
सच पूछो तो
मर्यादा नहीं
प्रासंगिकता बड़ी है
इच्छाशक्ति का कद
ऊँचा
काठी मजबूत और कड़ी है
वह किसी भी मर्यादा से
अधिक
बहुत अधिक बड़ी है!

इसलिए शब्द भी
ढूँढते हैं प्रसंगों में
अपनी मर्यादा
वे भी सीमाएँ गढ़ते
सापेक्षताएँ बाँधते!

रंग भी, लकीरें भी
अपनी मर्यादा की सीमा
अपने आकार के आयाम
रोज घटाते-बढ़ाते
सिकोड़ते-फैलाते समय-संदर्भ में!

और शिल्पी की छेनी?
ताज महल हो या कुतुबमीनार
मिस्र के स्तूप हों या
मोहनजोदड़ो
जापान में एटम के
विध्वंस का प्रतीक हो
या शान्ति का कबूतर
प्रताप के घोड़े की टाप हो
या दँराती से घास काटती
गाँव की खेतिहर मजूरिन
खजुराहो के रति-रत जोड़ें हों
या गाँधी की लाठी टेकती मूरत
इनकी छेनी ने सदा रूप दिया
उकेरा
अपने समय का सच जो था सत्ता का सच
शक्ति का द्योतक सच!
सच
जो सापेक्ष था
शाश्वत नहीं!

शाश्वत था तो केवल
शिल्पी का हुनर
उसकी दक्षता
उसका भावों को पकड़ने का कौशल

उसकी अभिव्यक्ति की ललक
जो कोई भी सत्ता छीन नहीं सकी!

शिल्पी ने
गढ़ी अपने शिल्प की मर्यादा
खुद ही गढ़ी काल-सापेक्ष सीमा
पर विषय पर अधिकार रहा
समय का

राजा का
धर्म का
राजनीति का
इसलिए अपनी छेनी से
उसका सच और वह
स्वयं बाहर ही रहा!

यक्षकन्या के रूप-लावण्य में
उसकी प्रेमिका का रूप
मुखर हुआ हो, हो सकता है
माँ की मूर्त्ति में
माँ की ममता झलकी हो
हो सकता है यह भी!
पर इन सबको खुद शिल्पी ने
अपनी नहीं
राजा की ही नज़र से देखा था
आँका था!

छेनी अपने आप आ जकड़ी
शिल्पी के हाथ
गढ़ने लगी बुत

शिल्पी
अब देवता नहीं
टोकरी ढोने वालों के बुत
गढ़ने लगा
हाथी पर महावत और हौदा
बिठाने लगा
हौदे में राजा नहीं
रानी भी नहीं
बच्चे बैठने लगे
जोड़े बैठने लगे

बागों की सैर करने लगे यात्री
बच्चे, जोड़े

छेनी की पैनी नज़र
जो कुन्द पड़ गई थी
सदियों से उकेरते-उकेरते
राजा की कथा
रानी की कहानी
छुई नहीं थी कभी जिसने
प्रजा की व्यथा
अपने ही घर की कथा
चमक उठी थी
चल पड़ी छेनी
अपने घर की ओर
अपनी जड़ों की ओर
छेनी छनकी
ठुमकी
अपनी ही ठनक पर
नाच उठी छेनी

छमक-छमक
नटनी-सी करतब दिखलाती
मुग्ध अपनी ही धार पर
चल पड़ी छेनी
नयी डगर!

राजा के महलों की तरफ?
नहीं
देवों के ग्राम?
नहीं
वह दरबार से निकली

मन्दिरों से आईं बाहर
बच्चों की आँख में भरी
खुशी की लहर को
पत्थर की पोर-पोर में तराशने लगी
मुक्तहस्त मुक्तहास लुटाने लगी
शिल्प की ऊर्जा आदमी के पक्ष में!
आम आदमी की हिमायत में
अपनी झाँझर
मंदिरों में नहीं
देवालयों में नहीं
दरबारों में नहीं
गली-कूचों में, डगर-डगर में
छनकाने लगी!

नार्वे में शिल्पी ने
उगा दिये बुतों के बाग
जिसकी डगर-डगर पर खड़े
आम आदमी के बुत

बुत बच्चों के
बुत औरत और आदमी के
बुत बेटे के
माँ के, पति के, पत्नी के
पेड़ों पर उतरते-चढ़ते
कूदते-फाँदते बच्चों के
मीनार पर
आदमी-औरत
बच्चे-बूढ़ों के
एक दूसरे पर चढ़ते-उतरते
सरों के बुत ही बुत!
बुत भीड़ के

बुत मज़दूर के पुट्ठों के
बुत रोते-हँसते बालक के
हजारों-हजार बुत!

स्वीडन में गढ़े 'कार्ल मिल्स' ने
औरत के बुत
मछली के बुत
औरतनुमा मछली के बुत
पानी पर तैरती-नाचती
मछलीनुमा औरतों के बुत
बैठते-उठते, नाचते-थिरकते बुत!
घोड़े दौड़ाते
घोड़ों पर दौड़ते
हवा को पकड़ते बुत
हवा में फड़कते बुत!
कानी उँगुली पर टिका बुत
अँगूठे की नोक पर डटा बुत

घोड़ों की पीठ पर चढ़ा बुत
खुदा के हाथ पर
नंग-धड़ंग खड़ा
गगन को निहारता इंसान का बुत
जो विश्व को ललकारता!
शिल्पी ने गढ़े
आम आदमी के बुत!

शिल्पी बदलने लगा
आम आदमी से जुड़ने लगा
छेनी अपने संदर्भों में
ठोक-ठठाने लगी
बदलाव की परिभाषा!

गद्य से उभरती भाषा बदलाव लाई

भाषा ने गद्य का रूप जो धरा
बोली में लिख दी कथा!

लिखी गाथायें
लिखे आख्यान
व्यथायें लिखीं, लिखे व्याख्यान!
शास्त्रों की चौखट तोड़ निकल आई भाषा!
देव-दानवों से मुक्त हुई
भाषा!
आदमी से आदमी को जोड़ती
भाषा!
संवेदना के ककहरे पढ़ती-पढ़ाती-पढ़वाती
भाषा!
'देवकी' के तिलस्म लाँघती
'बंकिम' की 'नन्दनी' ललकारती
'शरत्' की दुविधा में
डूब-डूब ऊब-डूब
दायरे
'चरितहीन' के तोड़ती

भाषा!
'गबन' में आदमी का
अन्तर कुरेदती
'निर्मला' में समाज के
परखचे उधेड़ती
मुर्दा समाज के शरीर पर
सदियों के
'कफ न' उघाड़ती भाषा!

आनेवाली पीढ़ी के
बंजर खेत में
कहानी-कथाओं का
बीहन छींटती भाषा,
महलों के बुर्ज तोड़ती
राज-दरबार छोड़ती
तोतों की गरदनें मरोड़ती
राक्षसों की मुंडियाँ तोड़ती
पिंजरे से प्राणों को खींचती
मरती राजकुमारी की
देह में प्राण फूँकती
महल के पिछवाड़े की
खिड़की से फाँदती
खेत-खलिहान में उतरती
उठाती-पुठाती
मैदान में लाती
माँग-सी पगडंडियों पे
दौड़ती भाषा!

लड़की के पाँव की
पाजेबों में छनकती
घोड़े की टापों से
धूल उड़ाती!

प्रसाद की 'कामायनी' के
मनु और श्रद्धा
इड़ा और प्रज्ञा के
प्रेम-पगे पलों को
गंभीर-गहन तर्क में
उलझाती-सुलझाती,
'मित्रो मरजानी' के वक्ष में दबी
इच्छाओं की मार के
गहरे घाव पहचानने लगी
औरत की कोख़ पर
पुरुष के आतंक के
निशान गिनने लगी
औरत की 'हूक' और 'कूक' के
अर्थ बटोरती
देवी के मन्दिर की
दुल्हिन के कोहवर की
दासी के पाँवों की
बन्दिशें तोड़ती
औरत की मुक्ति का
मैदान मार आई भाषा!

'ठण्डे गोश्त' के एहसासों की
भाप-सी उड़ान बनी भाषा!
'लिहाफ' की भीतरी परतों का
रहस्यमय उठान बनी भाषा!
'रसीदी टिकट' की स्वछन्द औरत का
सच्चा बयान बनी भाषा
'इक चादर मैली-सी' को
औरत की देह से
उतार आई भाषा!
समाज के चेहरे से
झूठ के नकाब

खींचती
बदलाव के भूकम्प लाती
झेलती भाषा!
सदियों से अछूते गद्य को
सम्मान बाँटती भाषा!
'हितोपदेश' के

लोमड़ी-सियार के 'उपदेश' से
बुद्ध की 'जातक-कथाओं' के कथ्य से
देवता के चमत्कारी गल्प से
बहुत आगे निकल कर
आदमी के अन्तर की
परत-परत खोलती भाषा!
प्रकृति के, दर्शन के
ज्ञान के, विज्ञान के
दरवाजे खोलती
सूर्य की रफ्तार से
सदियाँ नापती
पूरी की पूरी पृथ्वी को
वामन-सी
नापती भाषा!

20वीं सदी तक आते-आते
गोर्की, टालस्टाय की
रोमांरोलां की
लुशुन, शॉ की
प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और
राहुल, यशपाल की
कड़ियों में
अनगिन-अनेकानेक
नाम जोड़ती भाषा!

टुकड़ा-टुकड़ा आदमी

सतत् बँटने के लिए अभिशप्त
निरन्तर विकास के लिए वर-प्राप्त,
अमीबा का अन्तिम वंशज
नहीं छोड़ सका बँटने की आदत
टुकड़ों से उठ-उठकर जुड़ना
फिर नयी यात्रा पर चलना
मंजिल पर पहुँचने से
पहले
चौराहों पर अलग-अलग
रास्तों पर भटक जाने की
चाह-भरी शिद्दत
नहीं छोड़ सका है
अमीबा का वंशज
फिर उल्टा चलने लगा है
आज को
अतीत में ले जाने लगा है
पर छिपकली से
डायनासोर बनने की ओर
आदमी से बन्दर
बन्दर से

अमीबा
बनने की तरफ लौटना
अमीबा की फि तरत नहीं है
यह तो है सभ्य आदमियों का षड्यंत्र
उनका ही 'एडवैंचर'!

प्रकृति को पछाड़ने की होड़ में
फिर बँटने लगा है आदमी
नये-नये टुकड़ों में
टुकड़ा-टुकड़ा आदमी
आम और विशेष के
कटघरों में खड़ा
सब कुछ है
पर आदमी नहीं है!

अंग-अंग में बँट रहा आदमी
केवल हाथ
केवल पाँव
टाँग-बाँह
मुँह और पेट
या केवल मगज बन रहा आदमी
परमाणु की सीमा तक
तिल-तिल बिखरता आदमी
टूटता-बँटता
जीवित बम बन फूटता
विस्फोटक बनता
विध्वंसक बनता
संहारक मारक गैस
जान-लेवा कीट बन रहा आदमी!

परमाणु बम फेंकने वाला
पायलट
हो गया था
पागल
परमाणु टूटने की शक्ति से उत्पन्न
धूल का गुब्बार देख
गुब्बार का हश्र
और अंजाम देख!
गुब्बार
जो लील गया
लाखों-लाख प्राण
आनेवाली नस्लों के भ्रूण को
कर गया अपंग
पीढ़ी-दर-पीढ़ी के लिए!
पर विश्व के किसी कोने में
कोई
ऐसा गीत न गाया जा सका
नारा न लगाया जा सका
कविता न लिखी जा सकी
कथा न कही जा सकी
जो एटम के खिलाफ
कर देती विश्व को
पागल
वह नष्ट करने पर तुल जाता
बम के जख़ीरे
हाईड्रोजन के भंडार
स्टारवार की प्रयोगशालाएँ!
हाँ, चलती रहीं जरूर
कभी निर्णय पर न पहुँचने वाली
शिखर-वार्ताएँ!

कोई चितेरा
विश्व के फ लक पर
एटम के धुएँ की
उठती-फैलती दीवार
नहीं कर पाया अंकित
जनमानस के फ लक पर
कि विश्व-मन में
भर जाता आक्रोश
जो चीर देता धुएँ की दीवार
कटार-सी तीक्ष्ण लकीरों से!
छपते रहे जरूर कुछ पोस्टर
दीवारों पर सटते रहे चन्द पोस्टर!

कोई शिल्पी
उस विध्वंस के विरोध में
नही गढ़ सका कोई ऐसा कबूतर
जो चुम्बक बन जाता
खींच लेता जन-जन का मन
विश्व की चेतना जगत का तन
बन जाता प्रतीक
ऐसे अभियान का
जो अमन का पैगाम ले
उड़ जाता आसमान में!
हथियारों के सौदागर
स्टारवार के वाहक
बमों के सर्जक
हाथ उठाकर
कर देते समर्पण
फेंक देते हथियार
कलिंग को फिर कभी न
विजय करने की खा लेते
कसम

हिरोशिमा से माँग लेते
माफ़ी
झुका लेते उसके विध्वंस पर अपना
सर!

इराक में तेल के कुओं में
आग लगाने वाले
सागर में असंख्यों मछलियों को
काली मौत मरने को
मजबूर करने वाले
विश्व में
परमाणु का पर्यावरण फैलाने वाले
हवा में विष घोलने वाले
नस्लों के 'जीन्स' में घृणा भरने वाले
कर लेते प्रायश्चित!

पर ऐसा कुछ नहीं घटा!
न कोई सर झुका
न किसी ने कसम खाई
न माँगी माफ़ी
बस हिरोशिमा की याद में
हर वर्ष
सितम्बर में उड़ाए जाते रहे कबूतर!

अमन की बात करते
हमलावर!
शान्ति की बात करते
विनाश के सर्वाधिक शक्तिशाली जख़ीरों के
मालिक
मानवता का दम भरते
पशु!

छह दिसम्बर : कुछ चित्र

1.
एक नारा
जय श्रीराम का
गूँजा
ध्वनियाँ-नाद बन चढ़ गईं आकाश
दौड़ने लगे धरती पर पाँव
हाथ-मुट्ठियों से
लगे हवा को ठेलने
धूल बन गई गुब्बारा
ढक गया गगन
धुँधला पड़ने लगा रोशनी का रंग!

किसी तूफान का शक
सच में बदल गया
अन्देशा नहीं
हादसा घट गया
राजसत्ता ने कर ली आंखें बन्द!

विवेक औंधा
न्याय अन्धा

तर्क गूँगा
बुलन्द धूल का हौसला
जय श्री राम का दंभ
बमों के धमाके करता
लगा फूटने
विस्फोट विस्फोट विस्फोट!

सहस्रों हथौड़ों की चोट से
हाथी-सा चिंघाड़ कर
ढाँचा गिर गया
एकबारगी
धूल ने ग्रस लिया सूरज
आकाश में रात घिर आयी
सन्नाटा सन्नाटा सन्नाटा!

शेष विध्वंस
गोली की आवाज़
दूर से सुनाई देता
जय श्री राम का
उद्घोष
सिर्फ राम लापता थे

2.
ढाँचा पसर गया
बन गया मलबे का ढेर
छितराए बन्दनवार
चटकीं शिलाएँ
शिलाओं पर लिखी थी
एक ही इबारत

न्फ स्त न्फ स्त न्फ स्त…
चीर रही जो
चाकू-सी जन-मानस!

जहाँ खेलता था राम
वह चबूतरा गायब था
राम भी नदारद था
कहीं नहीं था रामलला!
गैंते और कुदालें
खोदी थीं नींवें जिनसे
नहीं खोज पायीं कोई कंकाल
किसी मनुष्य या
भगवान का!
भरा पड़ा था
माटी-पत्थर-चूना
मौजूद थी शिलाएँ
पर नहीं था खुदा उन पर
कोई नाम
न राम का, न बाबर का

हवा भाग खड़ी हुई थी
कि कहीं
उसके पेट, पीठ या छाती में
उतार न दे कोई
चाकू

डरा-डरा आकाश
समेट तारों की
चादर
चुपके से
सूरज को बुलाने

पूर्व की खिड़की से कूद गया था
शायद रोशनी देख
भाग जाए अँधेरे की ताकत!

3.
पूरा देश
लंका-सा जल उठा
जब एक पूंछ ने खींच दी
अग्नि रेखा
भारत के नक्शे पर

बजरंगबली को क्या खबर
कि उसने लंका नहीं
अयोध्या जला डाली थी
राम को मार डाला था
उसने युद्ध में?

धधक उठी थी आग
चूँकि सरकारी दमकल
पानी नहीं
घी डाल रहे थे उस पर

रामलल्ला
चूस रहा था कटा स्तन
दूध का स्वाद
खून-सा हो गया था
रामलल्ला रो रहा था

एक भाला उठा
और गिरा
एक बच्चा चीख़ा
रामलल्ला मर गया!

स्तर

स्तर
चाहे पानी का हो या मनुष्य का
एक ही बात है
मनुष्य भी पानीदार होता है

आकार
चाहे खेत का हो या खलिहान का
जमीन का हो या मकान का
या फिर मनुष्य का
एक ही बात है

इन से ही होता है तय
स्थितियाँ बदलीं हैं
या
जस की तस बरकरार हैं
बदलाव हो रहा है
या
ठहराव है।

चाहे कितना ही दावा करे हीगल

द्वन्द्व मेरे भीतर का
करता है विकास
लीला किसी सर्वोच्च शक्ति की
या
कोई शाश्वत आत्मा व 'स्पिरिट'
नहीं कर सकती कोई भी परिवर्तन
चाहे कितना ही दावा करे
हीगल

वह
जो ईश्वर या उसकी शाश्वत सत्ता को
या शाश्वत स्पिरिट को
मानता है
वह मनुष्य की मुक्ति का नहीं
मनुष्य की गुलामी का दर्शन
स्वीकारता है
यह जान गया हूँ मैं
नकारता हूँ मैं इस दर्शन को!

गाँठों की मुट्ठी में बन्द जिन्दगियाँ

हम बाल श्रमिक
बुनते कालीन
बाँधते गाँठ-गाँठ में
बाप के रीत
माँ की प्रीत
पर कच्चे धागों सी कट जाती
घर लौटने की
बची-खुची उम्मीद
उभर आती कालीन पर
सपनों की बेल
अरमानों के बूटे उग आते
यादों के बिरवे
तिर-तिर आते आँखों में
टेसू के टह-टह करते फूल
कालीन लहक-लहक उठते
पलाश-से
देश-विदेश में बिकते कालीन
दूब-सा
जंगलों में बिछते कालीन
दीवारों पर लटकते बेल-सा

फर्श पर गरीब-सा पसरते कालीन
उन पर दनादन चढ़ जाते बूट
निधड़क बेझिझक हक-से
हम तरसे 'जिनगी' भर
नंगा पाव रखने को अपना
जिन पर

जब पुटूस और पलाश बहुत आते हैं
याद
हम और कस कर बाँधने लगते
कालीन की गाँठ
बहुत 'जोर मारने' लगता है कालीनों पर
डिज़ाइन
हमारे मालिक का मुनाफ ा बढ़ने लगता है
हमारे बाप पर बढ़ने लगता है
कर्ज़ का सूद
कालीन की गाँठों में बँधे
हमारे 'नान्ह-नान्ह' सपनों के बदले
कभी-कभार मुंशी
धर देता है खुचरा पैसे
'नान्ह-नान्ह' हथेली पर हमारे
हमारी पसरी हथेली पर
धर देता मालिक
मनीआर्डर की रसीद
जिसके बदले
इन गाँठों की मुट्ठी में बंद
'हमार जिनगी'
हम कैद
कालीनों में उकिरे डिज़ाइनों की
रंगबिरंगी लकीरों से बनी
कोठरियों में!

एक मरा-मरा गुमशुदा बचपन

ऐ मेरे पिता!
तुमने मेरी कमाई से भरा मेरे भाई-बहनों का पेट
खरीदीं माँ की दवाई
दादी की रजाई
हासिल की राहत की साँसें
और पाया बोझ हल्का होने का अहसास
अच्छा लगा मुझे
सुख मिला कि रिश्तों को पुख्ता करने की मुहिम में
मेरा गुम बचपन अकारथ नहीं गया

जब तुम मेरे हाथ में
गड़ेरिये की वंशी थमा कर भेज देते थे
गाँव के डाँगर चराने
जब मुझे अपने साथ ले जाते थे जमींदार के खेत
बेगारी खटवाने
मैं
जुड़ा रहा अपने गाँव से
घर-परिवार से
बाप का साया, माँ का अँचरा
बहिन का 'धागा'

भाई का जोड़ीदार-सा हौसला
सुरक्षा कवच-सा घेरे है मुझे
रिश्तों की गरमी देती रही गरिमा
पीढ़ियों से
पुश्तैनी धंधों में महारत हासिल करता मैं
विश्व में तुम्हारा नाम ऊँचा करता मैं
चाहे रेशम हो या तसर
चाहे बोसकी हो या मलमल
ताँत हो या सूत
तुम्हारे पास बैठ कर सीखता रहा
ताने-बाने बिनना
उकेरना इतिहास-मिथक और जनजीवन
असुर-अप्सरा-आईना और देवता
चाँदी हो या ताम्बा
पीतल हो या काँसा
तेरे सधे हाथों के सहारे
मेरे नन्हे-नन्हे हाथ देते उन्हें रूप
कलश-कलमदान के
कड़ाही-कुल्हाड़ी-कटार के
छेनियाँ तेज़ करता मैं
पत्थरों पर पजाता कुल्हाड़ी, टाँगी, दँराती
कभी शर्मसार नहीं हुआ
ना ही हुआ मलाल मुझे घंटों काम करने का
खेल-कूद के बदले बचपन में खटने का
मैं सीख जो रहा था हुनर
जीने का
ऐ मेरे पिता ऐ मेरे डैडी ऐ मेरे अब्बा
जब से तुमने बेच दिया मेरा बचपन
तस्करों के हाथ
घोल दी मेरी हँसी में
नशीली दवा

भर दी मेरी पाकिट में
मारफीन की सुइयाँ
चरस की पुड़िया
और
मेरी भोली सूरत को कस दिया
'बूटलैगर' के फ्रेम में
थमा दिया मेरे हाथ में बोतलों से भरा झोला
या दारू से लबालब भरा टायर
मूल्यों को नई परिभाषा दे कर
अपराध को कर दिया गौरवान्वित
तब से, हाँ-हाँ तब से
मैं कट गया मनुष्यता से
टूट गई रिश्तों की डोर
साया बन गया शिकंजा
अँचरा निरर्थक
'धागा' कच्चा
जोड़ीदार भाई कम्पीटीटर
रिश्ता व्यापार में बदल गया
घर-गाँव-परिवार
गुम हो गये सब
मर गया मेरा बचपन
अपराधों की दुनिया में मैं
अपने बाप का भी बाप बन गया
मैं मरती हुई पीढ़ी का
एक मरा-मरा गुमशुदा बचपन
ऐ मेरे पिता ऐ मेरे डैडी ऐ मेरे अब्बा

चुप हो गई हवा

हमने काँटों को तार में उलझ कर बाँध कर
इन्हें तोड़-फलाँग-झटक कर दूर हटा दिया था
या दबा दिया था
घावों से, जख़्मों से
और कुन्द कर दिया था
उनके कांटों की चुभन को

गोरों की बैरकों पर से
कोर्ट-कचहरी पर से
तार हटा दी गई थी
और तब हम आजाद हो गए थे
शायद उसे ही आज़ादी की संज्ञा दी थी हमने
पर वह आज़ादी तार के घेरों से निकल
शायद अखाड़ों में उग आई
कँटीली झाड़ियों में उलझ गई
और फिर तार घिर गई है कँटीली
सरकार के गिर्द
मुख्यमंत्री और प्रधानमन्त्री के चौगिर्द
सचिवालय के बाहर, कचहरी के भीतर
मन के अन्दर!

आज़ादी फिर कैद हो गई है तार के भीतर
क्या फिर क्रांति होगी?
चूँकि तार घिर गई है सत्ता केंद्रों के गिर्द
शक्ति पूंजों के चौतरफ
धूल उड़ रही है सड़कों पर
प्रदर्शनकारियों की ओर लाठी लिये सिपाही
उसे भी खदेड़ रहे हैं
चुप हो गई है हवा
सिपाहियों ने शायद उसे भी गोली मार दी है
वह घटना स्थल पर ही तत्काल
मर गई है
बिना सिसके, बिना हिचके
बाकी है बस नालियों में कीचड़ से लिपटा
सूखा खून
चूँकि उसकी आँखों का पानी
सूख गया है!

सूरज एक जानदार तमाचा

जब तक मुट्ठी की तरह तना सूरज
धरती की बाहों में नहीं उगेगा
तब तक समय-क्राँति के बीज नहीं उगाएगा
प्रभात-रोशनी की पौध नहीं लगाएगा
जब तक घूँसे की तरह तना सूरज
क्षितिज के शीशे नहीं तोड़ेगा
तब तक हवा का रूख नहीं बदलेगा
धरती का मुख नहीं निखरेगा
और जब तक कमान पर चढ़कर
हवा नहीं सधेगी
तब तक व्यवस्था को नहीं भेद पायेगी
आयाम को नहीं तोड़ पायेगी!

इसलिए मत गढ़ो प्रभात के सौंदर्य-गीत
उषा की लाल-प्रीत, हवा की चंचल-रीत
यह सब व्यवस्था के प्रतीक हैं
बदलो इनका स्वरूप
सूरज को बनने दो एक जानदार तमाचा
जो धरती के व्यवस्था-परक चेहरे पर लगे
और बिगाड़ दे उसका परंपरागत रूप!

हवा को बदलने दो समुद्र का रूख
अब नहीं उलझने दो उसे मौलिश्री के पेड़ों में
ना ही उड़ने दो उसे बादलों के संग
ना ही करिश्मे दिखाने दो तूफानों के सहारे
क्षण-भंगुर बदलाव के

आज कह दो हवा से
कि उस्तरे-सी खरोंचती चली जाय
बदलाव की सतही लहरों को समुद्र पर से
चूंकि वे समुद्र पर उठ कर
क्रांति का भ्रम फैलाती हैं
कह दो उसे अपनी रगड़ से लगा दे समुद्र में आग
ताकि जो भी पुराना है जल जाय
फूँक दे शंख नये युग का
जिससे पानी में कमल नहीं, उग आयें कैक्टस
और कैक्टस में खिल आयें फूल!
कुछ भी बाकी न बचे पुरानी व्यवस्था का
प्रतीकों का, पुराने मूल्यों का
इतिहास का, संस्कृति का
क्योंकि वह सब मात्र जुगाली हैं जुगाली
नया अन्न नहीं, जिससे भर सके पेट!

एक युधिष्ठिर मैक्सिको में

मैक्सिकों में भी
एक युधिष्ठिर यात्रा पे निकला
अपने कुत्ते को साथ लेकर
यमराज से अपने
पुरखों की हड्डियाँ माँग कर
वापस लाने!
पहाड़ लाँघता
स्वर्ग-नरक की सीमाएँ पाटता
सूर्य से टक्कर लेता
चन्द्र को जवाब देता
भूख की आग से सहयोग लेता
पानी में तैरता
हवा में उड़ता
जंगल की आग को
भूख की आग से काटता
बढ़ता!

पर वह युधिष्ठिर
युद्ध में
सहस्रों का संहार करके

नहीं चला था
वह जुल्म के खिलाफ
भूख के खिलाफ
विनाश के खिलाफ
यमराज से लड़ने निकला
स्वर्ग-नरक के तहखानों में भरी
अपने पूर्वज आदिम मानव की
माँ की, पिता की हड्डियां
खोजने चला था!

उसने हड्डियाँ खोजीं
उसने हड्डियाँ पहचानीं
उसने हड्डियाँ जोड़ीं,
अपने पूर्वजों को
आदिम और हब्वा के
आकार में खड़ा किया!
गलत हड्डियों के समीकरण से
पैदा हो गये जनख़े
जनख़े
आने वाली पीढ़ियों के
आमोद के, प्रमोद के
विनोद के साधन
स्थायी तबके!

उस यात्रा की याद में
उसकी यात्रा के सहायक-सहयोगी
उसकी यात्रा में बाधक-विरोधी
चन्द्र के, सूरज के
आग के मन्दिर बनाए उसने
भूख का निदान करने वाली
भूख की आग मिटाने वाली

धरती की कोख़ से जन्मी मकई को
दे दिया
प्रजनन के, उपज के
देवता का नाम
मकई का भुट्टा
देवता का सिर
उसके पत्ते
बाहें
और जड़ें
पाँव!

सदियों बाद तक
इन सबके मन्दिर
काई से भी अधिक सघन
मैक्सिको के हरे-हरे
जंगलों में
सफेद भूरे पत्थरों पर बनते रहे!
आज तक
मैक्सिको का आम आदमी
इसी कहानी को
दोहराता है
सदियों से सदियों तक के
सृजन गीत गाता है!

भय से भगवान

तभी एक दिन
उसी एक क्षण में
भय-आतंक और हदस के पल में
आदिम भय ने रचा
विश्वास
गढ़ दी आस्था
दुविधा का नाश कर
विश्वास और आस्था को रूप दिया
उच्छृंखल मन
मन का भय
करने को वश में
रच दिया प्रतिमान
दर्शन में विश्वास का
भर दिया रंग!
बिखरे विचारों को
दे कर केन्द्र-बिन्दु
उसकी प्ररिक्रमा का
रच दिया ब्यूह!
आदिम की सृष्टि औ'
औ धुरी सृष्टि-चक्र की

आदिम ने ही रची
फिर से उसी ने खुद ही
निर्मित कर दी दूसरी धुरी
दिया नाम
खुदा-गॉड-भगवान!
भगवान?
ऊँची-ऊँची कल्पना
ऊँची-ऊँची उड़ान
भिन्न-भिन्न
गहनतम विचारों की कतार
ऊँची और गहरी पहचान
प्रेम के 'सोते' से
सराबोर!
उसी को लेकर खड़ा किया
आदमी ने
घृणा का कटघरा।
भगवान!
छूने लगा आकाश
भेदने लगा पाताल
जिसे पाना भी असम्भव
और छूना भी!
प्रकृति से भी ऊँचा
दिया उसे आसन,
ब्रह्माण्ड से भी बड़ा
अधिकार दिया
आकाश-गंगा से भी लम्बी
नील-बोल्गा से भी बड़ी
गंगा से भी चौड़ी
तकदीर दी उसके हाथ
जिसका गंगा से भी बड़ा पाट
भूत-भविष्य-वर्त्तमान की

त्रिकाल आँख मढ़ दी उसने माथ
जो
खुद उस पर
उसकी गतिविधि पर
आदिम से आदमी बनते
आदिम पर रखे नज़र
उसे बाँधे!
पर
वह खुद ही बंध गया
गगन में टंगे
नियन्त्रण के अदृश्य कक्ष से
जिससे वह
आकाश की तरफ
उँगली दिखाकर
अपनी सन्तानों को
चेताने लगा
आने वाली पीढ़ियों को
बताने लगा
दिखाने लगा
कठपुतली बनाने की
औकात रखने वाले
आदिम से आदमी बनते
आदमी ने तब से
कठपुतली बनना
स्वीकार कर लिया!

पृथ्वी पर
भिन्न-भिन्न नियम
भिन्न-भिन्न सलीके
आचरण, व्यवस्थाएँ
संहिताएँ भिन्न,

आदिम से आदमी बनते हुए
आदिम ने प्रकृति के
पृथ्वी पर
चमत्कृत-विस्मित-आतंकित
करते
घटना-क्रम को
ब्रह्माण्ड में विचरते
लौकिक-अलौकिक पिंडों को
भौतिक-अभौतिक भ्रमों को
दृश्य-अदृश्य पुंजों को
सृष्टि-चक्र की
सृजन और विनाश की उर्जा को
पंचतत्त्व की प्रजनन-शक्ति को
ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान-स्रोत को
दर्शन करार कर
अघटित के घटने के भय को
प्रकृति की चमत्कारिक
शक्ति को, आस्था को
भगवान कह दिया
कर दिए नये-नये रास्ते
ईजाद!

उसे पाने के
उस तक पहुँचने के
रास्ते
बन गये धर्म
नियम, धर्म की घोषणाएँ
धर्म देने लगा आज्ञाएँ
आदिम उनका अनुचर
पालन-कर्त्ता!
धरती के

भिन्न-भिन्न भागों में
भिन्न-भिन्न भगवान जन्मने लगे!

खुद को जन्तु से
कर लिया आदिम ने अलग
जानवर से अलग होता आदिम
बन गया आदमी
सभ्य आदमी!
जो
भगवान बनाता
धर्म बनाता
विधान बनाता
नियम बनाता
अनुष्ठान करता
अनुष्ठान करवाता
मिथक गढ़ता
आदमी फैलने लगा
आदमी बढ़ने लगा
आदमी बिखरने लगा
आदमी जुटने लगा
आदमी आदमी के पास आने लगा
आदमी आदमी से युद्ध करने लगा!

काफिले

चारागाहों की खोज में
शिकारगाहों की खोज में निकले
आदमी के काफिले
आदमी के काफिले से टकराए!
आदमी के जानवर
आदमी के जानवर से टकराए
टकराए
आदमी के नियम
भिन्न-भिन्न नियमों से!

भिन्न-भिन्न धर्मों से
भिन्न-भिन्न भगवानों से
नियम, धर्म और भगवान
तीनों टकराए
टकराए काफिलों से काफिले!
काफिलों के वर्चस्व का युद्ध
शिकारगाह, चारागाह
हथियाने के युद्ध
आदमी के जानवरों को
आदमी द्वारा हथियाने के युद्ध

अपने देवता बनाने बनने के युद्ध
अपने धर्म को
सर्वोपरि मनवाने के युद्ध!
काफिलों-काफिलों में होड़
काफिलों के भीतर भी दौड़!
काफिलों के नेतृत्व का दौर
नेतृत्व की होड़ का दौर!
काफिलों ने सरदार बनाए
सरदारों में सरदार चुनाए
एक दिन
जन्तु से आदिम
आदिम से आदमी बनता आदमी
आदमी से राजा बन गया
आदमी और भगवान के बीच की
एक सीढ़ी
भगवान का वारिस
देवता का दूत
उसके आदेशों का पालक
आदेशों को मनवाने के लिए
जिम्मेवार!

फिर चुप हो गयीं शताब्दियाँ

काल-चक्र निःशब्द चलता रहा,
बिना पग-चिह्न छोड़े
समय-रथ बढ़ता रहा!
शब्द अलिखा रहा
श्रुति ने भी जबान नहीं खोली
कलम की स्याही चुक गयी
कवि की कलम रुक गयी
गीत मौन रहे
नहीं उकेरा शिल्पी की छेनी ने
कोई शिला-लेख
चितेरे के रंग फ लक पर नहीं उभरे
सदियाँ चुप रहीं
कालचक्र बिन धरती छुए
गुज़र गया!

तब व्यास बोला
रचा महाभारत
इतिहास उन सदियों का
विश्व को दे

चुप रह गया
सदियों तक!

भारत चुप
विश्व गुम-सुम
आदमी का कवि
आदमी का
शिल्पी और चितेरा
संस्कृति, सभ्यता और समाज के फ लक पर
पर्दा डाले बैठा रहा
इतिहास की सूक्ष्म पकड़
पकड़ नहीं पाए
समय के पन्ने
लिख नहीं पाईं
सदियाँ
कोई शिलालेख!

सदियाँ बीत गयीं
युधिष्ठिर को
यमराज तक की यात्रा शुरू किये

यात्री
किधर से गुज़रे
पता नहीं चल पाया
यात्रा कब खत्म हुई
कहाँ खत्म हुई
पता नहीं चल पाया!
न कोई पड़ाव
न मंजिल के निशान
न अलाव
न यात्रा के सामान

न मील के पत्थर
न शिलालेख
न बुर्ज, न खण्डहर
न अभिलेख
न गीत, न गान
अनन्त यात्रा
बिन पग-चिह्न छोड़े
जारी रही
अन्तःसलिला सरस्वती-सी
भीतर ही भीतर!

बालू बखेरता रहा इतिहास
बालू उड़ाता रहा इतिहास
सागर उठा ले जाता रहा वर्तमान!
तटों पर से, किनारों पर से
पोंछता रहा आज
जो कल था वहाँ!
सागर
पोंछ देता वह घड़ी
जो कुछ घड़ी पहले
तट के बालू पर
रखी थी लहरों ने!

बहस

हम बहस करते हैं
मीटिंग बुलाते हैं
मीटिंग में बहस चल रही है
बाहर
भीड़ दरवाज़ा पीट रही है
मुहल्ले में आग लग गयी है
हम बहस कर रहे हैं
'आग बुझाने के लिए
दमकल कौन बुलाए?'

आग इन्तज़ार नहीं करती
आग फैलती जा रही है
मुहल्ला जल-जल भस्म हो रहा है
बहस अभी जारी है!

दरवाज़ा बन्द है

भीड़ दरवाज़ा पीट रही है
कर्फ्यू लगने ही वाला है
गुण्डे घेर रहे हैं घर
गुण्डे अन्दर आने ही वाले हैं
पुलिस चुप
दंगाइयों के साथ मिल गई
पुलिस दंगाइयों से मिल कर लूट रही है
सलमा को उठा ले गई है भीड़
मुन्ना भूख से बिलबिला रहा है
रिक्शा लेकर
लौटा नहीं है बाप
माँ तो पिछले ही साल
भेड़ियों की हवस का शिकार हो
मर गई थी
रात बारह का सिनेमा टूटा है
अब्बा अभी भी नहीं लौटा है
मुन्ना रो रहा है
अन्दर बहस चल रही है
दरवाज़ा बन्द है!

बहस अन्दर जारी है

हमें बहस करते छोड़
भीड़ आगे निकल गई
किसी और का दरवाज़ा
खटखटाने
जो इस वक्त बहस छोड़
उनके साथ सड़कों पर निकल आये

भीड़ आगे बढ़ रही है
खुद कोई रास्ता निकाल
संघर्ष करने
हताश होकर
दंगाइयों से भिड़ने
या दंगाइयों के साथ मिलकर
कोई दूसरा मुहल्ला लूटने
मरने या मारने

हम
भीड़ के पीछे दौड़ रहे हैं
'रुको-रुको
बहस खत्म होने दो

योजना बनाने दो
फैसला होने दो
अपनी ताकत तौलने दो'

भीड़ फैसला ले चुकी होती है

भीड़
दरवाज़ा खुलने का
इन्तज़ार करने नहीं रुकती
परिस्थितियाँ रास्ता बना रही हैं
कोई एक आगे हो लिया
भीड़ उसी के पीछे चली जा रही है

कमरा बन्द है
बहस अन्दर जारी है!

जंगल का संघर्ष

सितम्बर था
सन् उन्नीस सौ अड़सठ का।
जंगल के
आदिवासी-वनवासी को
नारा दिया था हमने
'घूस नहीं अब घूँसा देंगे'
सूत्र दिया था हमने
'लाठा, छावन और जलावन
मुफ्त में सबको देना होगा'
मंत्र दिया था हमने
'जो जोते हैं जंगल-जमीन
उनको कब्जा देना होगा'
सपना दिया था हमने!

जंगल के सिपाही का जंगल में
आना-जाना बन्द हुआ
रेंजर और फॉरेस्टर का
राउंड लगाना बन्द हुआ
शुरू हुआ आठ दिनों का
जेल भरो अभियान

गाँव-गाँव में गूँज उठी
'जेल चलो' की तान
जंगल का मन
जन-जन का मन
मर मिटने को उद्धत
आदिवासियों का अद्‌भुत था जुटान!
हजारीबाग के झेंप गये सदान
चप्पे-चप्पे में फैले तीर-कमान
माण्डू में लगे मक्का के ढेर
सुबह-शाम सत्याग्रहियों का मेल
सोमवार 'राहों'
मंगल को 'पचमों'
बुधवार 'करमा'
जुमेरात 'रतवै'
शनिवार को पूरे जिले का रेला
'जेल-भरो' अभियान का अद्‌भुत था मेला
जोंडरा[1] का दर्‌रा[2] खा-खा कर
अड़े रहे जंगलों के वासी
सरकार झुकी, जमीनें छूटीं
बुलन्द हुए मुकाबले
जंगल जुल्म के विरुद्ध
दमन की रफ्तार मन्द
जुल्म के हथियारों की धार भोथरी
दलालों की दलीलें गुम
जन-जन ने अपनी ताकत देखी
एकता की शक्ति परख़ी!

---

1. जोंडरा : मकई, 2. दर्‌रा : दलिया

झारखण्ड संघर्ष

सन् 1969 में
शिवराम सिंह की कोलियरी पर
करेंगे चढ़ाई
केदला के मजदूरों ने ललकार लगाई!
आगे आए झारखण्ड के
मीलू राम, मोला बाई
'राहों' के बाजार से लौटते
केदला यूनियन आफिस में
बनी छिप-छिप कर योजना
आधी रात को मीटिंग बैठी
कसम खा कर लौटी 'मोला'
'झण्डा अपने झोंपड़े पर फहराऊँगी
कोई छुएगा तो ढेला चलाऊँगी!'

शुरू हुई झारखण्ड पर चढ़ाई
पट गया लाल-लाल झण्डों से
मैदान
झण्डे की लपटों से उठी दहक
कोयले की खदान
जंगल में पलाश

'रत्त-रत्त' फूलों से पट गया
सभी चले
सभी ओर से चले
संग-संग सब साथ चले
झारखण्ड की ओर चले
गाड़ी में चले हम लोग

रामचन्द्र नोनियाँ का दस्ता आगे-आगे
सड़क पर ठोंक-ठोंक कर लाठी
टोह लगाते चलता
सूँघता, बारूदी सुरंग की गंध
जो ठेकेदारों ने बिछायी
साजिश
गाड़ी को उड़ा देने की

कोलियरी के
चैक-पोस्ट के सामने खड़े
लाठी, भाला, फरसे से लैस
पाँच-पाँच कतारों में पहलवान
शिव राम सिंह की भाषा में
उनके मजदूर जवान
कतारों के पीछे झोपड़ों में कैद मजदूर
हर घर पर तैनात
एक-एक पहलवान
एक-एक लठैत मजबूत
लठैतों की आँखों से
झाँकती तू
उन कतारों को तोड़ती
मैं बढ़ी आगे
झोपड़ों में जाने को उद्धत मैं
सामने तू

यकायक सफेद कुरते में
ऊँची-हट्टी-कट्टी पहलवान-सी
खड़ी मेरे सामने
रोकती मेरी राह
पहलवान के कंधे पर सवार हो

'तड़ाक' एक थप्पड़ तेरी गाल पर जड़ा मैंने
जोर से एक ठहाका
गूंज उठे नारे, गूंज उठा जयनाद
'जिन्दाबाद-जिन्दाबाद'
तू फरसा ले झपाक से
लपकी मुझ पर
तेरे मेरे बीच
बस दो इंच का फ ासला
छपाक्
एक छड़ी उठी
मोड़ गई हाथ
वार चूक गया तेरा
'कोनार इंसपैक्टर' की फुर्ती
टाल गई मृत्यु की घड़ी
मैं चिल्लाती हुए बढ़ी
'हिम्मत है तो मारो
पिया है माँ का दूध तो मारो
सामने हूँ खड़ी'
मजदूरों के झोपड़े तक
जाने को अड़ी रही मैं

ढेला चल गया
लाठीचार्ज, भगदड़
निहत्थे मजदूर
छिप-छिप झाड़ियों में चलाते

ढेला
एक तीर तड़ाक से
चला
'दिलावन-दिलावन'[1]
नाद
सांझ का झुटपुटा
तीर का चलना
डुगडुगी का बजना
रंग गया लाल खूनी रंग से आसमान
सूरज की आँख गुस्से से
हो उठी लाल
पहलवानों के मुँह पर पुत गई राख
तू डर गई
तेरे पैगम्बर डर कर गए भाग
भगदड़ मची
उनकी जमात भय से सिकुड़ी
तीर के निशान से
पुलिस भयभीत
झण्डा ले हाथ में निकली
मोला बाई निर्भीक
धीरे-धीरे आये बाहर सभी मजदूर
धौड़े से अपने-अपने
हौसले बढ़ा
नारे पे नारे
'टूट गया भई टूट गया
झारझण्ड गेट टूट गया'
'टूट गया भई टूट गया
लोहा गेट टूट गया'
'मजदूरों का मन
मोर-सा झूमा'
'चीरहरण का बदला लेंगे'

लिया प्रण
लौटा मजदूर
शिवराम सिंह का
गढ़ दरका
रामकृपाल एजेंट का प्रण
'तड़का'[2]
'मोला' का संकल्प जीता
ननकु, मीलू और प्यारी जीते
मल-मल कर हाथ रह गयी तू
जहर बुझा तीर दे गया था मात!

कम्पनी की ऐंठन बाकी थी अभी
झारखण्ड में मेरे जाने पर रोक
बाकी थी अभी
झोंपड़े पर झंडे की मनाही थी
यूनियन की मैम्बरी पर तबाही थी
मजदूरी में घपला
संगठन के अधिकारों पर हमला
शुरू हुई भूख-हड़ताल

दिल्ली से अफसर आये
पटना से हाकिम आये
पत्र आये, आदेश आये, हरकारे आये
कभी गुपचुप मीटिंग, कभी चुपचुप बैठक
रिसीवर का दबाव
मालिकों की जमात पर
बढ़ता गया
अनशन का दबाव

मेरी आँखों में झाँकती तू
प्यासी जीभ की नोक को

तोल कर देखती तू
भूखी आँतों की ऐंठन को
मरोड़ कर देखती तू
अपनी कामयाबी को हाथ में आया मान
मेरे गिर्द घूम रही तू

आया मजूरों का रेला
नारों से आसमान गूँजा
डुगडुगी की आवाज़, नगाड़े पर नाद
चोट खाये शेर सा दहाड़ती
डरकर भागी तू

उठ गया लोहा गेट
टूट गया चैकपोस्ट
हमारे जाने पर प्रतिबंध हट गया
मजदूरों का भुगतान
'बेजबोर्ड' से होगा
नोटिस खदान में लग गया
यूनियन का आफिस
खुल गया झारखण्ड में
मैम्बरी के लिए
मजदूरों का ताँता लग गया

केदला की पहली हड़ताल

फिर हुआ कई बार मौत से युद्ध
चला हड़तालों का सिलसिला
बढ़ा ठेकेदारी हमला
केदला झारखण्ड में मुकम्मल हड़ताल
जिसे तोड़ने को ठेकेदार बेजार
चौंतीस नम्बर खदान का मजदूर
हड़ताल पर हमलों को रोकता
पहरेदार बना
ठेकेदारी घुसपैठ लोकता
संख्या में कम पर हौसला अदम्य
शर्मा के, सिंह के लठैतों के वार
तत्पर हो रोकता
मजदूर चौंतीस नम्बर का
पहाड़ी पर हमला बरकरार
सैकड़ों लठैतों ने
दूसरी पहाड़ी पर बनाया मोर्चा
की हमले की योजना तैयार
चैंतीस नम्बर धौड़े में भी औरत-मर्द तैयार
पुनीराम बाबूराम
भाला से लैस

टाँगी सम्भाल कर
चौंतीस नम्बर के चौंतीस जवान
डटे अपनी खदान पर
औरतें भी हमला करने को
खटिया की बाँही ले
धौड़ों के द्वार पर तैनात
भीतर से बच्चे भी
नारे के जवाब में नारे लगाते
दुश्मन को अन्देशा था
भारी असला है हमारे पास
गद्दार बना अमीर खान
मुखबिर बन ठेकेदार का
जा मिला उसके साथ

आज की परिभाषा में
सभी निहत्थे बिन हथियार
पुश्तैनी हथियार ही बस उनके पास
या उनके औजार थे उनके साथ
पर हौसला बुलन्द
संकल्प का तमंचा
हर एक के संग
'माटी-टोपी' की बम-सी आवाज़
रखती दुश्मन की दूरी बरकरार
योजना की दीवार ने दुश्मन के सब रास्ते
कर दिये थे तंग और बंद!
अगले दिन
मेरे कान के पास से गोली सरकी
भगवान सिंह के वक्ती धक्के से
मैं गोली की राह से हट गई
पुनीराम ने जबरन बिठाया मुझे गाड़ी में
थाना से मदद लेने को पठाया

एक मदद करने वाले का पता बताया
प्रशासन और पुलिस ठेकेदारों के साथ
नौ नम्बर खदान के बीच की पहाड़ी पर
बस नाटक करने को गारद थी तैनात
जिन मित्रों से मदद की थी आस
मैं गई उनके पास
पर सभी के सभी गायब
सभी थे वक्त के यार
चौंतीस नम्बर धौड़े पर वापस लौटी हताश

मेरे जाने के बाद दुश्मन घुस आए धौड़े में
औरतों की लूटी इज्जत
मर्दों की मिली मार
पुनीराम को बाँध कर ले गए अपने साथ
पुनीराम की माँ रो-रो बेहाल
'मोरा बेटा वापिस ला दे माँ!'
एक चीख मेरे कानों में गूंजी
पुनीराम की माँ
धरती पर रोती-रोती लोटी
मैं लौटी उल्टे पाँव
ले 'बाला सिंह' को साथ
दुश्मन के कैम्प तरफ लगी
पुलिस चौकी में जा घुसी
'पुनीराम को हाजिर करो!'
दारोगा को आदेश दिया
'तुम लोगों के रहते
उसे उठा ले गए लठैत?'
मैंने दरोगा से सवाल किया
मजिस्ट्रेट गायब था
पांच बन्दूक और

दस लाठी के साथ
जमादार बस हाजिर था!

पुनीराम को बुलाया उसने
पर पुनीराम मेरी गाड़ी में बैठने से कतराया
'मुझे राजनीति नहीं करनी' वह बोला
मैं इशारे को समझी
'सीधे परिवार के पास ले जाओ इसे'
पुलिस को ताकीद की
तुरन्त पीछे से शर्मा आ धमका
लठैतों के साथ
जमादार जोड़ता हाथ
शर्मा को ठेलता
मुझे भाग जाने को प्रेरता
आंखे तरेरता
और अनुरोध भी करता
अपनी मजबूरी जताता
इज्जत बचाने को कहता
शर्मा के आदेश पर
मेरी कार पर
बरसने लगी लाठियाँ
बम से उड़ा देने की मिलने लगीं धमकियाँ
मैं बाहर निकलने को उद्धत
मौत झेलने को तत्पर
पुनीराम को लौटाने को चिन्तित
टकराने को कटिबद्ध
दरवाजा खोलती
बाला सिंह ने रोका
ड्राइवर को टोका
गाड़ी चलाने का आदेश दिया
गला दबाने को मेरा

शर्मा के हाथों पर बैठ
तू बढ़ी
बाला सिंह ने रोक लिए तेरे हाथ
तू मेरा गला न पाई दबोच
अटक गये तेरे हाथ
खिड़की के शीशे में लटक गए तेरे हाथ
डाँट खाकर भी, थप्पड़ सहकर भी
ड्राइवर न माना
गाड़ी स्टार्ट की और भागा
कार पर लाठियाँ बरसती रहीं
गाड़ी आगे बढ़ती रही
बम प्रहार की योजना
धरी की धरी रह गई
हमले की खबर
फैल गई जबर

पहाड़ी के पीछे से
घाटी के नीचे से, धौड़ों के ऊपर से
खदानों के अन्दर से
ले सब्बल, बेलचा, हैम्मर
हजारों-हजार मजदूर आ जुटे
कामिनें धड़ा-धड़
गोद में, उँगुली पर
या पीठ-पीछे बाँधे बच्चे
लाठी-गैंता-टाँगी या
खटिया की बाँही
जो मिला सो उठाए
आ जुटीं
चौंतीस नम्बर खदान पर

सामने नम्बर नौ पहाड़ी पर
आगे पुलिस

पीछे हथियारबन्द पहलवान तैयार
दायें पहाड़ पर लाठी लिए
पहाड़ी के घुमाव पर लठैत तैनात
जन-समूह विशाल मेरे साथ
दुश्मन पर हमले को उद्धत
पूरी सड़क को मजदूरों ने कर दिया जाम
भर दिये पत्थर
इधर का पहाड़
उधर धर दिया
रास्ता बन्द कर दिया
ले गये
पहाड़ी के ऊपर मेरी कार ठेल कर मजदूर
रातों-रात केदला तक बन कर
हो गई थी सड़क तैयार
चौंतीस नम्बर खदान से
झारखण्ड के जंगल में
हर नाके, हर मोड़ पर मजदूर तैनात
लगाए बैठे थे घात
'कैसे जायेगा शर्मा, आज देख लिया जायेगा!'
'आज फरिया लिया जायेगा!'
यही मजदूरों का संकल्प
कोई दूसरा नहीं था विकल्प

गाड़ी को दूर रख
बी.डी.ओ. आए
आदिवासी दारोगा कुण्डु को साथ लाए
सड़क पर पत्थरों का पहाड़ था
पूरा रणक्षेत्र तैयार था
हम सभी एक साथ
गिरफ्तार होने को तैयार
बी.डी.ओ. घबराये

जाकर पुनीराम को वापस लाये
रात में छिप कर
पुलिस संरक्षण में
बी.डी.ओ. की जीप में
शर्मा वापस लाईयो जा पाये
हड़ताल चालू रही
काम बन्द रहा
मजदूर बाजी मार गये
ठेकेदार हार गये
वार्ता समझौते की चालू हुई
मजदूरों की शर्तों पर फैसला
सरकार और ठेकेदार ने
कबूल किया
बी.फार्म बनाना
पहचान-पत्र बनाना
बोनस और वेतन भी
वेज-बोर्ड से देना मंजूर किया
चौंतीस नम्बर खदान से
ठेकेदार हटा
रिसीवर ने सीधे चलाना
कबूल किया
मजदूरों को स्थायी बनाना
मंजूर किया!

प्रकृति युद्धरत है

जीवन अस्तित्व की लड़ाई है
सर्वाइवल आफ द फिटेस्ट
समर्थ ही जिएगा
के संदर्भ में
प्रकृति युद्धरत है
युद्धरत रहती है
युद्धरत रहेगी
नहीं तो उसे मिटना होगा
प्रकृति की
जीने की अदम्य इच्छा से जन्मे
असंख्य नामपटों वाली वनस्पति के
गुमनाम गलियारों के बीच
हर अंकुर का जन्म ही
मिट्टी के खिलाफ एक विद्रोह है
अंकुर से पेड़ तक का सफर
हवाओं के खिलाफ एक लम्बा युद्ध
फूल से फल, फल से अंकुर
अंकुर से पौधे का रूपाँतर चक्र
प्रकृति का काल-चक्र के विरुद्ध एक समर
मृत्यु के खिलाफ

जीवट संघर्ष
गति को आत्मसात् कर
प्रकृति
पेड़ों के तनों में आ रुकी है
और चलती है भीतर ही भीतर
रेशों के पहियों पर
मील दर मील
योजनाओं की दूरियाँ पाटती
वाल्केनिक कम्पनों की रफ्तार से भी
वह पेड़ों को नीचे ही नीचे
पाताल से
ऊपर, और ऊपर, बहुत ऊपर
आकाश से
टहनियों और पत्तों में चतुर्दिक फैल कर
चारों दिशाओं से जोड़ती
चौतरफे हमले के लिए
तैयार खड़ी है
पृथ्वी के वक्ष पर
उसकी जड़ों की पकड़
है गति के विरुद्ध
मिट्टी की कसी हुई मुट्ठी
उसकी जड़ों के फैलाव-कसाव का
नीचे, और नीचे धंस कर
जड़ता की जड़ें खोदना
है जड़ता के विरुद्ध गति का
अन्तर्मुखी अभियान
गति और जड़ता के अन्तर्द्वन्द्व से उपजा
पेड़
मिट्टी-पानी-हवा-आग को समेटे
प्रकृति का प्रथम सेनानी

अमरलता का जड़ विहीन फैलाव
काई का कम्पित प्रगाढ़ प्रसार
फफूंद की अस्तित्व-हीन पहचान
फुनगी की आँखें खोलती मुस्कान
पानी को नकारती शैवाल की जड़ें
युकलिप्टस की आकाश को ललकारती लम्बाई
बरगद की दोहरी-तिहरी-चौहरी होती देह
है प्रकृति का कतारबद्ध मार्च-पास्ट
जो विनाश के विरुद्ध
सतत सजग
गोलबन्दी
घेरेबन्दी में
माहिर समर्थ
उसका हर सिपाही युद्धरत है हर मोड़ पर
अपने-अपने परिवेश में
अपने-अपने लाम पर
मुहिम पर
चोटियाँ ऊँचाइयों पर चढ़कर
जमीन की सतह के विरुद्ध
झंडे उठाये खड़ी है
शिलाएँ
प्रकृति के गुह्य गुहा-द्वारों
दुर्भेद्य दुर्गों में
पहुँचने के लिए प्रतिबद्ध
गुप्तचर रास्तों के सामने
एकाएक प्रवेश-निषिद्ध का
पट लगाए
आ खड़ी है
'न जाने देंगी' की मुद्रा में
यायावर पगडंडियाँ
रतजगे करती घूमती

बेतार के तारों की सूक्ष्म लहरों-सी
कानों-कान फुसफुसा कर
मुखबिरी करती
सूचनाएँ देतीं
चट्टानें लेटी हैं सत्याग्रही-सी
नदी के पाटों के बीच
पानी के आवेग को
थामने को कटिबद्ध
प्रतिबद्ध

घाटी
आकाश की दीवारें फाँदने के लिए
अपनी जाँघों की सीढ़ियाँ लगाए
खड़ी है
सदियों से
जिस पर चढ़ रहे हैं
पौधों-पेड़ों पत्थरों-चट्टानों के सिपाही
लताओं की कमन्द के सहारे
अपने-अपने हथियारों के साथ
युगों से
युद्धरत
आकाश की अगम्य ऊँचाइयों के खिलाफ
काल-पुरुष की सर्व-भक्षी भूख के खिलाफ
सर्व-ग्रासी रूप के खिलाफ

काल-पुरुष
जो ऋतुओं के रूप धरता
आकार-प्रकार के अनंत मुख गढ़ता
रात-दिन की गति से प्रतिबद्ध
पल छिन की पग-ध्वनि करता
लपकता

अपने अमर होने का
उद्घोष करता है
ब्रह्मांड का अट्टहास हँसता है
सूर्य-चन्द्र की दो आँखों से झाँकता
आकाश-गंगाओं की सहस्र जीभों की कोरों से
उल्का की लारें टपकता
पृथ्वी को
प्रकृति की शून्य-भुजाओं में भींचने को आतुर है
सागर गुर्राता-उफनाता
गगन को ललकारता अपनी लहरों के हाथों
अपने रोम-रोम से रिसते
स्वेद फेन से
रेत के मीलों-मील लम्बे वक्ष पर
पुनः-पुनः हस्ताक्षर करता
अगति के खिलाफ लड़ने का
प्रतिज्ञा-पत्र लिखता
मौन के विरुद्ध लिखता
सीपियों, शंखों के
अक्षर शब्दों से
एक महावाक्य
जो लौटते समुद्र के पग-चिह्न-सा
रेत पर उभरता साफ-साफ

और युद्धरत प्रकृति का सागर सारथी
लहरों के घोड़ों की
फेनिल लगाम थाम
हवा के रथों को हाँकता
हुंकारता
गगन का शंख
दिशाओं में गूँजता
महानाद

शंखों की ताल पर
जलकणों के घुंघरुओं की
झंकार पर
एक महानृत्य के ताँडव को देता ताल
किरणों का अट्टाहस
बालू के होंठों पर तैरता

हर पोर पर मुट्ठी बाँधे बाँस
उसका हर रेशा सीधा तना
उर्ध्वमुखी कोरों को थामे
हर गाँठ पर
जीने की ललक फण ताने
संघर्ष के लिए दृढ-प्रतिज्ञ
हवा के थपेड़ों को ठेलती
तन कर खड़ी है
पृथ्वी के गर्भ में जड़ें जमाए
आकाश की ओर हथेलियां उठाये
सघन वन में
अपनी पहचान बनाने के लिए
अपने गिर्द के पत्थरों
पेड़ों
गहराइयों, ऊँचाइयों से
बचाता
सदियों को अपनी गाँठों में बाँधे
सीधा तना बाँस
समय के विस्तार को
अपनी बाँसुरी में भरे
अस्तित्व का युद्ध लड़ता
सीत्कारता
धरती की कई परतों को
समय की शर्तों को

पार करता
खड़ा है बाँसों का झुरमुट
गगन-छू पहाड़ियों पर
नारे लगाता
गगन की ऊँचाइयों को ठेंगा दिखाता
चढ़ा जाता

बरगद अपने हाथों को
धरती पर टेक कर
दोहरा खड़ा हो गया
गड़ाए
धरती में जटाएँ
गंगा जो आकाश से नहीं धरती से फूटती है
भरता अपने रस में
और झरता
ज्ञान के स्रोत-बीज लाल-लाल
जिन्हें सुग्गे टूँगते
बच्चे चखते गाँव के
गौतम धारते
जिसके गर्भ से उपजता
निर्वाण मोक्ष का संदेश
वट-वृक्ष
जो निर्माणकर्ता है बुद्ध का
पृथ्वी का सन्त
प्रकृति का शांति-दूत
विकास के क्रम में जो एक पाँव पर जड़ था
अंगद-सा अड़ा
पाँव गड़ाए
अस्तित्व के युद्ध की ललकार पर
पुनः लौटकर
चौपाया बन गया

एवोल्यूशन के सिद्धांत से हटकर
बचाव के क्रम में आगे बढ़ गया

कहते हैं ज़िराफ की गर्दन लम्बी हो गई
चूंकि पेड़ों के पत्ते ऊँचे हो गए
लेकिन वनस्पति के अस्तित्व समर में
युकलिप्टस
पशु के मुँह और मानव के हाथों की
पहुँच से ऊपर ले गया
अपना पत्र-छत्र
प्रकृति का
दधीचि युकलिप्टस
हवाओं की जीभ ने
चाट कर पपरी-सी
गजनी-सी मुलायम कर दी जिसकी त्वचा
जिसकी सफेदी में नसों का नीलापन घुल गया है
और उकिर आई है सफेद हड्डी-सी वज्र देह
वज्र-सी चोट करती
दधीचि संकल्प से भी कुछ आगे बढ़ गया है
युकलिप्टस
मिट्टी को ही नहीं
आकाश को भी नकारने का दम भरता
हड्डी देह पर
हवा भी हाथ नहीं धर पाती
बूँद भी नहीं रुक पाती
किरण तक फिसल जाती
रंग उड़ जाते
सीधे और ऊँचे के मापदंड
तने रहने की सौगंध
आदिम को सिखाता
युकलिप्टस

हर जोखिम के लिए
तैयार
हमलों को
हर मोड़ पर लोके खड़ा है

आदिम की उत्पत्ति के पहले आदिम के पुरखे
बच्चे पेट से बाँध या पेट की थैलियों में भर कर
जीवन से जूझते थे चौपाए
आदिम-युग में
पेट की मजबूरी से
बच्चे पीठ पर लद गए
लेकिन पेड़ युगों से
अस्तित्व की लड़ाई आगे बढ़ाते
अपने अंखुए देह पर लपेटे
सर पर लादे
आज तक झरते हैं
साल दर साल
धरती पर उगते हैं, बढ़ते हैं
अपने आप

पौधे बनते पेड़
बीरबहूटी-सी लाल कोंपलों के
होंठों से
किरण के स्तनों से पीते दूध
हवा की थाप से
लोरी सुनते
धूप की रजाई ओढ़ते
घूमते निरंतर अस्तित्व के चक्र में
रूपान्तर चक्र
उन्हें मरने नहीं देता
गर्भ और प्रसव की पीड़ा से मुक्त प्रकृति
प्रजनन सहजेच्छा की परिणति है!

प्रकृति युद्धरत है
गति के खिलाफ
लेकिन जड़ नहीं
पानी के खिलाफ
लेकिन बिरस नहीं
आग के खिलाफ
लेकिन सर्द नहीं
समय के खिलाफ लेकिन शून्य नहीं
युद्धरत है
मिट्टी की दीमकी भूख के खिलाफ
लोलुप जीभों वाली हवा के खिलाफ
रेगिस्तानी विस्तार की
बलुआही बंजर आकांक्षा के खिलाफ
निरन्तर युद्धरत
उसकी औलाद
चीटियों का धीरज धारे
लीक-दर-लीक चलती
मोर्चों की तरफ बढ़ी जा रही है
अथक-अडिग-अबाध
और हर मोर्चे
हर मुहिम
हर मुकाम
हर मोड़ पर

पाताल-पृथ्वी-आकाश
जल-थल-हवा
सर्वत्र
युद्धरत है
युद्धरत रही है
युद्धरत रहेगी!

मजदूरायण

मैं रथुराम हूँ
छोटकन के बड़कन के
प्राणाम करूँ हूँ
मैं मजूर हूँ भाईमन
मेहनत से पेट भरत हूँ
काम मिले सो करत हूँ
या काम की बाट जोहत हूँ
इसलिए मोर रामायण
रोजगार की स्याही से लिख दो
सब ज्ञानी-जन
सब गुणी-जन

मोर रामायण रोटी के कागद पर आँक दो
सब गुरुजन
सब भाईमन
लिख दो मोर पेट पर
रामायण का एक ऐसन दोहा
एक ऐसन चौपाई
जे कहे
सदा सुखी रहूँ मैं

खुश रहूँ
कभी भूखा नहीं रहूँ
मैं रामायण को पूजत हूँ
भाईमन
पर पढ़त नाही हूँ
मैं पढ़े के जानत ही नाही
गुरुजन
किसी ने पढ़ाया ही नहीं
न पढ़े के मौका दिया
बस कहा 'सुनो'
और मैं
सुनता रहा सदियों से

मोर जबान पर रामायण के आखर लिख दो
ओ रामायण-वाचक
ओ पढ़े-लिखे ज्ञानी लोगो
मैं रामायण खुद पढ़ लूँगा
रामकथा सही-सही जान लूँगा
शम्बूक के हत्यारे को चीह्न लूँगा
अभी तो मैं वही सब सच मानता हूँ
जे तुम सब जन कहत हो
जे सच नाही लागत
मोर मूरख मन के भी
पर मैं उस झूठ के भी
सच मान कर चलत हूँ
चूंकि मोर पास उकरा
झुठलाए के
न सबूत है न औकात

मोर पास कान ही हैं बस
आँखें हैं

जे खुद देखत नाही हैं
तुमरा दिखाया ही देखत हैं
जुबान नाही है
कि कह सके सच-सच
आँखों देखा हाल
संजय-सी शक्ति नाही
जे बता सके सच-सच
मरने और मारने वालों के समाचार
इसीलिए कहत हूँ
मोर जबान पर आखर लिख दो
लिख दो राम
लिख दो लक्ष्मण
लिख दो भरत
ताकि मैं रमुआ से राम
लछुआ से लक्ष्मण
और भरथुवा से भरथ बन जाऊँ
राम-रहीम
लच्छु-लच्छु मियां
भरथु खान के साथ
कारखाने के गेट पर लगी
लम्बी कतार में खड़े
मजदूरों की जमात को हाजरी खाते में
सही पहचान दिलवा पाऊँ

राम और रहीम का फ रक
खून-पसीने ने कभी नहीं किया भाईमन
गुरुजन
यह सब तो आप ही करते-कराते हैं
हमनी तो सबे साथ-साथ
प्रेम से खटत हैं
एक साथ ढेरों पसीना बहावत हैं

बस मेहनत करत हैं डट के
मेहनत कूतने वाला ही
कंजूस हैं भाईमन
हमरी बोली कम लगाता है
इसीलिए तो कहत हूँ भाईमन
मोर हथेली पर लिख दो
राम-लक्ष्मण, राम-भरत
कि सबके
राम-लक्ष्मण-सा
राम-भरत-सा
प्रेम संग जीना सिखाय दूँ

एक-से होवत हैं
सब खटेवाले हाथ
ये खटेवाले हाथ ही हैं
राम और भरथ
इनका मजहब पसीना है
और मेहनत है इनकी रामायण
इसलिए तो कहत हूँ
मोर हथेली पर लिख दो राम
ओ 'नबाधा[1]-वाचक'
कि मैं और कसके पकड़े रहूँ
आपन बेलचे की मूठ
कुदाल, गैते और फावड़े की बेंट

मोर हथेली ने नहीं छुई कभी कलम
ना ही ठण्डी तलवार की धार को जाँचा
उंगलियों की पोर ने
ना ही किसी ने हमें सिखाया
इन्हें छूना
पकड़ना

चलाना
मैंने कभी
हथेली नहीं फैलाई
भीख में
हक की कमाई खात हूँ
जन्म-जन्मान्तर से
इसलिए मोर हथेली पर
लिख दो राम
कि मोर हथेली पर खिंची
भाग्य की रेखा
राम जी जैसन हो जाए
और मैं परास्त कर सकूँ
भूख के दानव को

हमर के चाहिए रोजी
हमर के चाहिए रोटी
हमर के चाहिए अमन
कारखाने का गेट
नित खुला
यही हमर जरूरत
जिन्दा रहने की शर्त
इसलिए कारखाने के गेट पर
लिख दो मजूरों की रामायण

ये अयोध्या में तुमने
सुन्दरकाण्ड का अध्याय
काहे खोल दिया है मेरे भाई?
इसे पढ़कर तो
घर में भी कलह हो जात है
मोर दादी बताई थी
तुमने तो अयोध्या में ही नहीं

पूरे देश में ही
कलह लगा दी है
का कहा?
राम के जन्म का अध्याय है
राम के जन्म पर
खुशियाँ बंटी होंगी
झूम उठे होंगे गरीब-गुरबा
तुमने तो जन्म पर ही
लड़ाई छेड़ दी मोर भाई
कैसन है ये जन्म की बधाई
राम पैदा हुआ
यह पिता दशरथ के खातर
अनन्त आनन्द की बात थी
ऋषि-मुनियों के खातर
जीवन-मरण की बात थी
राम किस कोठरी में पैदा हुआ
इसके लिए तो
कैकेयी भी सवाल नाय करले
न झगड़ा लगायल
उसे तो राज चाहिए था
आपन बेटा के खातर
इसलिए सीधा-सा सवाल किया
राज-पाट माँगा
अब तुम्हें का चाहिए मोर भाई?
राज चाहिए?
तो माँग राज
यह जन्म की कोठरी की
लड़ाई लगाये का
का तुक?
ऊपर से जोगी बनत हो
भीतर से भोगी हो

बगल में छुरी
मुँह में राम-राम करत हो
चाहिए राज
बात जनम की करत हो?

अब भला मैं कैसे जानब
राम कैसे पैदा होयल
केने पैदा होयल
तुलसी बाबा भी तो
नाही चिह्ना गए अयोध्या में
राम जी का जनम स्थान
उनको तो राम घर-घर में
दर्शन देने आवत रहे
वह तो पूरी अयोध्या को ही
राम की जनम-स्थली
पूरे जग को राम-मय बतावत रहे
'सियाराम मय सब जग जानी'
कह गये तुलसीदास
फिर हमर के का जरूरत है
माथा-पच्ची करै के
कि राम केने जनमे?

इस देश में
कित्ते मजूरों की माय है
जे बता सकत है
ऊकर बेटा किस खेत में जनमले?
जौन खेत में ऊ जन्मत है
उस पर तो साल आउते ही
जमींदार के कब्जा हो जात है
या छीन लेबत है महाजन
वहाँ खेत नाय

उनकर सपनों का
कब्रिस्तान बन जाता है
या बन जात है बाबू साहब की कोठी
कहाँ लड़ले है कोई
धर्म-गुरु आज तक
कहाँ महन्त किसी मठ के
अड़ले है कभी
वापस दिलावे खातर
मोर जनम-स्थली या मोर खेत
किसी महन्त का भण्डार गिरा कर?
मैं हो गेल हूँ इतना जवान
गबरू-नौजवान
कहाँ हमनी कोई बखेड़ा
खड़ा करल है आज तक
आपन जनम-स्थली के खेत के
खातर?

अरे सीता जी भी तो
खेत माँ ही पैदा हुई रहीं
मिथिला में बड़े-बड़े
ब्राह्मण-बनियों के खेत-खलिहान
महल-मकान बन गेल हैं
काहे नहीं वापस माँगत हैं
उन जमींदारन से
सीता जी का जनम-स्थल
जहाँ हल की फाल उनकर
खोजे रही अकाल पड़े पर
समझ गया मैं
राम के महल के
मन ललचाय है तुमरा
राज चाहत हो

राम-राज के तो बहाना है बस
इन साहूकारों का राज चाहत हो
भला सीता के खेत को
काहे घुरवाओगे?
काहे लौटवाओगे जनक का हल?
जरा लौटवाओ न सीता जी का खेत
जनक का हल?
लाखों बेकार किसानों की
कतार लग जावेगी
जिनकर तुम लोग
बे-जमीन हल-विहीन
कर देल हो

किस राम की बात करत हो
आप ज्ञानी-मन?
मैं जिस राम के जानत हूँ
वह अर्न्तयामी है
घट-घट में है
मोर मन में भी है
और रहीम के मन में भी
कबीर भी घट-घट की बात कहे रहे
गुरु नानक भी कुछ ऐसन ही कहे हैं
अरे!
हमर पर काहे गुस्सात हो
आप सब साधु-संत मन?
काहे मो के धकिया रहे हो?
मैं बकवाद करत हूँ?
कुतर्क करत हूँ?
मोटी बुद्धि हूँ?
छोट जात हूँ?
जा! मैं ना मानँगा तोर झूठ

का कहत हो?
आस्था का सवाल है
आस्था भी तो कहत है
राम अर्न्तयामी है
राम घट-घट मा है
हर मन मा
हर जन मा
हर जीव
हर जन्तु मा
और खड़े खम्भ मा भी
फिर अयोध्या में
ओही स्थान पर राम जनमे
जहाँ तू कहत है
यह झूठी आस्था
काहे ले लाद रहल हो मुझ पर?
क्या सिनेमा की सन्तोषी-माता
रच कर
जी नहीं भरा?
पहले ही कौनो
कम आस्था लदल है मोर पर
धर्म की
समाज की
बड़े लोगन की
भगवान की
शाप-वरदान की
भूत-प्रेत की
बुरी नज़र और अच्छी नज़र की आस्था
करम और भाग्य की आस्था
और जिकरा मैं जानत हूँ
उस राम की आस्था
अब तुम यह कौन से राम की

आस्था लाद रहे हो मो पर
देख भई
मैं तो निपट मजूर हूँ
मैं मानूँ तो राम
न मानँ तो राम न हैं
छू मन्तर हो जावेंगे
तुमरे सभी भगवान!

अच्छा चल थोड़ी देर के लिए
बहस की खातिर तुमरी ही
बात मान लें
कि राम अयोध्या में
वहीं जनमे
जहाँ तू कहत है
अच्छा तो अब तू ही बता
इससे का फ रक पड़त है
राम अयोध्या में पैदा होते
या लंका में
राम तो राम ही रहब न?
रावण तो नाय बन जायब
आज इस बेमतलब
लड़ाई के का मतलब?

अरे मोर भाई
मो के तो खटे जाय के है
बिन खटे
खाना नाहीं देंगे राम जी
ना मोर राम जी
ना तोर राम जी
मोर राम जी तो
मोर साथ रोज़ मजूरी करे जात हैं

खटत हैं डट के
मालिक से रोज़ गाली भी खात हैं
ढेर सारा कमाने पर
आधा-आधी हिस्सा भी माँगत हैं
शाबाशी भी देत हैं
और दण्ड भी

अच्छा बताओ ज़रा
जे मालिक हैं
ऊ सबनी के मन में भला
कैसन रह सकत हैं हमर राम जी?
तब ओ शबरी के घर कैसन जैब
केवट की ठिठोली कैसन सहब
बानर भालू की जमात संग ले के
कैसन लड़तै?
भला राम कैसे लूट सकत है?
एक गरीब-राम
एक अमीर-राम
का दो अलग-अलग राम होत हैं?

कैसन तर्क है
हम ही गरीबन के सब्र करे कहत हैं
आप सब गुरुजन
जंचे ना है ई आप लोगन के तर्क
हम अन्याय सहत-सहत
मर रहल हैं
अगले जन्म का लैमनचूस थमाय के
भुतलाओ मत हमनी के
तुमनी सब अमीरवन के चाकर हो
दूत हो, दलाल हो
गरीब के गरीब से लड़वात हो

राम का नाम लै-लै के
हमनी के
अगले जन्म तक इन्तज़ार करे कहत हो
ई जन्म के तो हम जानत हैं
हम भूख मरत हैं
हमर ई जन्म कैसे सुधरतै
इसकी सुध नाय है तोय?
एही तो सब समझ में नाही आवत है
काहे फिर भी हमनी सब
तुम जैसन की बात मान के
लड़ जात हैं आपस में
कैसन जादूगर हो तुमनी सब भाईमन?

तुमही बताओ न भाई?
राम अगर सब में है
सब के हैं
तो कैसे दंगा करवा सकत हैं
कैसे कहेंगे राम
लव-कुश के मार दो
सीता जी की इज्जत लूट लो
कौशल्या माता के जला दो?
तुम आपन राम
संभार के रखो आपन पास
तुम तो राम जी को
भंजावत हो

चल आपन रास्ता नाप
काम करे दे हमनी सब के
खटे दे
सूरज सर पर चढ़ आयल है
अभी गाड़ी बोझेके बाकी है

एक चौका भी नाहीं काटब
तो साँझ में चूल्हा नाहीं धरत
घर में बाती नाही जलत
हमर सीता भूखों मर जायत
कौन केने जनमा केने नाय
ई पचड़े में पड़ के हमनी
दिन भर की कमैनी नाही गमायब
हमनी के मूरख मत बना
चल फूट
यहाँ तोर दाल नाय गलत
ई मजदूरबन की बस्ती है
ईहाँ मजदूर के जमात रहत है
जे जप के नाही
खट के खात हैं
हिन्दु-मुसलमान में भेद नाही करत है
आपस में प्यार बढ़ात है
मिल-जुल के रहत है
मिल-जुल के
जुल्म के खिलाफ
लड़त है!

---

1. नबाधा : बिना रुके नौ दिन होने वाले रामायण का पाठ

चेरापूंजी के नवरंग

चेरापूंजी
अपार तेरा सौंदर्य
अपूर्व तेरा रूप
अनूठा सौष्ठव
सलीके से खड़े
सुडौल सुपारी के तने

लम्बे-लम्बे बाँस सरसराते
सरपट भागते जंगल
ऊपर और ऊपर
चढ़ रही केले की कतारें
कदम-दर-कदम चढ़ती सीढ़ियाँ

लम्बे पेड़ छूते
पहाड़ के कंगूरे
झरने लगाते छलाँग
पखारते घाटी के पाँव
झोंपड़े बीच-बीच में
सर उठाते
काले-काले फूस दिखलाते

दूर नीचे घाटी में
गलबहियाँ भरती नदियाँ
धरती पर
फैल-फैल जातीं
बची-खुची धरती
अँकवारतीं
कभी भारत से बंगला देश जातीं
कभी बंगलादेश से भारत
आतीं
सीमाएँ उलाँघतीं!

गोपद *

सर्प की मटमैली केंचुल-सी नदी
लपेटे कोबरा-सी काली चट्टानें
अड़ी-अड़ी खड़ी
उलझती-सुलझती
तेज-तेजतर-तेजतम
बहती केंचुल-सी धार
रगड़ती-रगड़ती
पेड़ों-पहाड़ों की जड़ें धोती
हरियाली के ऊँचे-नीचे घाटों में
मिट्टी के ढूहों को काटती
हाँफती-हाँफती
भागी जा रही थी
गाय-सी रंभाती
खुरों को पाटों में गाड़ती
बड़ी और बड़ी होती
नदी बनने की प्रक्रिया में।

---

* मध्य प्रदेश के सीधी नगर के बाद बढ़न के रास्ते में पड़ने वाली पहली नदी 'गोपद'। इस नदी में गाय के खुरों जैसी काली चट्टानों की भरमार है। 1985-86 के बीच की कविता ।

एल्पस के वक्ष पर *

एल्पस के वक्ष पर
जिप्सी की नस्ल का
ऐतिहासिक मुक्ति-गीत
झील की जल-तरंग
बार-बार गा रही

युद्ध के आर-पार
जुल्मों को भेदती
कारा को तोड़ती
प्रकृति की
प्यार की
गुप्त-गुफा खोलती
सत्यम् के सुन्दर की
सुन्दरम् के सत्य की
शिवम् के सुन्दर और
शिवम् के सत्यम् की
शाश्वत कथा कह रही
'आदम है हव्वा है
प्रेम है श्रद्धा है
सदियों की यात्रा है

जीने की इच्छा है
समर्थ ही जीवित है
जीवट ही जीवन है
हवा के विपरीत ही

चलने के मायने
राहों को गढ़ना ही
इतिहास का आइन है'

एल्पस के वक्ष पर
झील की जलतंरग
बार-बार गा रही
बार-बार गा रही!

---

* 1988 युगोस्लाविया में एल्पस पहाड़ से लौट कर।

लेह के पहाड़

माथे से बहने लगा पसीना
तरबतर झरने
नदियाँ
चढ़ते-चढ़ते थके पहाड़
आगे की चढ़ाई देख रुके पहाड़
श्रीनगर पर पड़ाव डाल
पसर गये रास्तों पर पहाड़
फिर भी
ऊँचाइयों की यात्रा रुकी नहीं
बढ़ती रही चढ़ती रही
ऊपर, ऊपर और ऊपर
ऊँचे ही ऊँचे

रास्ते मिटते रहे
रास्ते बनते रहे
चढ़ती रही मैं
साथ-साथ साथ-साथ

बर्फ से लिपटे पहाड़
चितकबरे धारीदार चीते या

सफेद रीछ फरदार
यह सृष्टि का अंत
या शुरुआत?
मैं नहीं जानती

जो भी है
विशाल हैं
विस्तृत अगाध अबाध
ऊँचाइयों की अंतहीन होड
प्रतिस्पर्धा
डर पैदा करती
भय भरती
मोड़ आतंकित
पर रास्ते
हौसलों की भरते कुलाँचें

बादल का धुआँ कहूँ या टुकड़ा
उड़ता-उड़ता
बर्फ की सड़क पर फिसला
पहाड़ों की बाँहों में झूला
धूप का रंग आँखों में कौंधा
पैदा कर गया रंगहीनता का रंग

पपड़ाये खेत का रंग
किसान की आँखों में
बादल को देख
डोलता
बर्फ की उँगलियाँ बिन रहीं
दिन और रात की भेड़ों से
बटोर कर ऊन
पहाड़ों के

चितकबरे कम्बल
बर्फ के 'बीच' पर

दूर-दूर तक फेंके
नारियल ही नारियल नज़र आते
समुद्र के किनारे फैला बलुआही मैदान।
ऊपर पास ही
नीला आकाश खड़ा उघारे बदन
नंगे किसान-सा
धूप-छाँव के रंग लपेटे
छाते-सा ढँक रहा

एक झोंका
ले आया धुएँ के रंग
झीना-झीना ढँक गया
सैलाब बादलों का

दूधी नदी जा मिली आकाश से
बर्फ की नोकों-पर
आ टिके बादलों के फाहे
भेद मिट गया
धरती-आकाश का

भूरी और मटमैली गहराइयाँ
हरी-हरी काली परछाइयाँ
नदियों की हरी लकीरें
उफनती-उफनती
उतरती ढलाइयाँ
पसीना-पसीना हो रही चढ़ाइयाँ
लो! बन गयी शीशा
किरणों की छुअन से

मोम-सा ढल गयी
सफेद सर्पिणी
धारीदार चीतों से गलबाहियाँ भरती
उतर आया आकाश धरती पर या
धरती आकाश पर चढ़ बैठी
क्या यही धरती का अंतिम छोर?
कहना कठिन है
यह गगन को चूमने का
धरती का अंतिम प्रयास है
कहना कठिन है

यह भूरे पहाड़ हैं या
साँवली मिट्टी के ढेर?
क्या बालू है यह
जमा जो
समुद्र के नीचे पत्थरों के साथ?
पत्थर जो तराशे
पानी और हवा के घर्षण ने
तरल, गोल, चमकदार
हो आए हैं

सब तरफ वीरान
सूनी गुफा, साँय-साँय सन्नाटा
सूखा-सूखा साकार सुखाड़-सा
घड़ियाल की तरह मुँह बाये
लपकता
न कोई चिह्न
न ही अवशेष
किसी जीव
वनस्पति या
पेड़ का

बस ऊँचाइयाँ और ऊँचाइयाँ
या गहराइयाँ ही गहराइयाँ
सफेद रंग और सफेद रंग
धूप का मूल रूप
कई कोणों-त्रिकोणों, गोलाइयों
प्रकारों-आकारों में रूपायित
धरती का
उजड़ा-उजड़ा
उखड़ा-उखड़ा स्वरूप
सिरजता

एक जीव
एक जीवात्मा
एक आत्मा
एक एहसास
एक जान
कह नहीं सकती कौन?
धरती की विशालता का
विराटता का
अगम्यता का
लबादा ओढ़े खड़ी है
उसकी बर्फीली सफेद घूरती आँखें
टकटकी बाँधे
चोटियों पर जड़ी हैं
पनीली पुतलियाँ झीलों में लगी हैं

स्वप्निल कोरें गगन में
किरणों-सी फैलीं
ठण्डी साँसें
बादलों के धुएँ-सी भर्रायी
गोल बाँहें नदी के घुमाव सी घिरीं

लेह के बौद्ध मठों की घंटियों की आवाज़ सुन
ठिठक गयी हैं
जीवन की पदचाप सुन
मचल गई हैं

अतीत की हवाओं पर
बज रही है
'बुद्धं शरणं गच्छामि' की धुन

पहाड़ों की दहलीजों पर
रख रहे हैं
प्रकाश-पुंज से श्वेत झरने
'अप्प दीप्पो भव' के दीये
मठों की घंटियाँ सुना रही हैं
गौतम के महाभिनिष्क्रमण की कथा
खड़ी चट्टानों में बहती
गहरे बहुत गहरे 'सिंगे ख्वास'
यशोधरा की गाथा-सी
बढ़ी जा रही है
बढ़ी जा रही है
बही जा रही है
बही जा रही है!!

---

* श्रीनगर से लेह हवाई जहाज में जाते हुए 25.5.84 को ।

पीठ पर बच्चे

पहाड़ों ने
कंधे पर बादलों को
ऐसे चढ़ा लिया
ज्यों गोरे-चिट्टे बच्चे को माँ ने
कंधों पर बैठा लिया

पहाड़ियाँ
बादलों को पीठ पर बिठा
चढ़ने लगीं आकाश
ज्यों मजदूरिन माँ
पीठ पर लादे बच्चा
चढ़ रही पहाड़!

---

* 24.10.82 को दीमापुर से इम्फाल जाते हुए ज्ञानेन्द्रपति के साथ।

आइजल

बादलों के कैनवस पर
पानी-खून मिट्टी-पत्थर
हरी-धानी
लोहे-लकड़ी
अँधेरे और रोशनी के रंगों की लकीरें
चू गईं
कैनवस पर आइजल उग आया

हरियाली हाशिये फाँद कर
गहराइयों में टपक पड़ी
और
लीप गई पेड़ लता बाँस और
केले के झुरमुट
पृथ्वी के चेहरे पर

रोशनी
तूली की नोक से सटी
आँकती रही
बादलों के कैनवस के बॉर्डर
सजाती रही कंगूरे

अपनी चमक से जड़ गईं
ऊँचाइयाँ
आकाशी निर्लिप्त निर्विकार चेहरे पर
जो झुक-झुक
ले रहा था
गहराई की थाह
रोशनी की तूली
युकलिप्टस के पेड़ की तरह
गहराई और ऊँचाइयों के हाशियों को
पाटती रही
बाँसों के यात्रियों के कारवाँ
'क्रॉस' उठाए
चढ़ते जा रहे थे
भुजाएँ उठा कर
ऊँचाइयों की ओर
'चरैवेति-चरैवेति का उद्‌घोष करते!

---

* 31.10.82 को गौहाटी से न्यू बोंगाई गांव जाते हुए ।

दीमापुर से इम्फाल : एक सहयात्रा

पानी की ऊबड़-खाबड़
पथरीली सड़क के किनारे-किनारे
कंकरीट की सपाट-सरपट नदी पर
हवा से होड़ लगाती
बढ़ती हमारी बस
पहाड़ों से भी लम्बी होती
तरु की बाँहों में से फिसलती
बादलों के ऊपर की चोटी पर
लिये जा रही थी कहीं

अभी यहाँ
प्रकृति का रंग मिटा नहीं
इसलिए हरियाली
मटियाली मिट्टी
करियारी चट्टानों के भीतर तक
छाई थी

बस दो ही रंग चारों तरफ
हरेपन के
गाढ़े-फीके उतार-चढ़ाव

और
आकाशीपन के
मेघीले-पनीले
शिशु-हाथी के रंग वाले

हल्के गदराये
नीले-सलेटी जमाव-फैलाव
जो रोशनी में
फीके पड़ जाते
अँधेरे में गहरे हो जाते

कहीं-कहीं पेड़ों के तनों से
झाँक जाती
बिजली के खम्भों की सफेदी
नभ के झरोखों से अचानक
झर जाता किरणों का झरना
या मील का पत्थर
अँकुर-सा फूटता
हरियाली पर एक सफेद तिल-सा
उभर आता

बाँसों की पतली-दुबली
सख्त उँगलियाँ
इशारे करतीं आकाश की ओर
अपनी पोरों पर थामे
किरणों की कोर
ऊर्ध्वमुखी खड़ी निमन्त्रण दे रहीं
आकाश को
धरती पर उतरने का
चमक उठती आकाश की आँख

हरियाली
रोशनी से नहाती
मटमैली नदी के
किनारे खड़ी
अपने वक्ष को ढँकने का
असफल प्रयास करती बार-बार

हाथों में हाथ लिये झुरमुट
गलबहियाँ भरते बाँस
पातों का पाग बाँधे
उँगलियों में उँगलियाँ डाले
जड़ों के पाँव धरते
छाया के डग भरते
तनों की लाठी टेके
पहाड़ों पर चढ़ रहे थे पेड़
यात्रियों के काफिले-से
चोटियों पर पहुँच कर
बादलों के
गले लग रहे थे
हँस रहे थे
किरणों की हँसी

हम हरियाली के
समुद्र में तैरते
मन के कुहासे में
टटोलते
गति के पंखों को
फलाँगते
समय को जकड़ कर
अपनी जेबों में भरने की
तमन्ना पालते

पी लेने के लिए सब
अपने चेहरे पर पसारे
अपनी आँखों की प्यालियाँ
दो बूँद सौन्दर्य की
माँग रहे थे
भीख
कि
एकाएक सफेदी उमड़ पड़ी
पहाड़ों के ऊपर पहुँच
उन्हें ढँक गई
मैंने बगल में देखा
कहीं तुम तो नहीं उठ कर चल दिये थे
वहाँ!!

---

* दीमापुर जाते हुए बस में 24.10.82 को ज्ञानेन्द्रपति के साथ ।

गुमनाम स्टेशन

पूरा नाम न पढ़े जाने वाले
गुमनाम स्टेशन पर
बिना रुके ट्रेन गुजर गई
स्टेशन मास्टर खुद ही
हरी झण्डी दिखला कर
ट्रेन गुजारता है यहाँ
आज भी

बस एक ही ट्रेन रुकती है यहाँ
एक बार आते
एक बार जाते
बाकी सब बिना रुके गुजर जाती हैं
सर्राटे से

अभी यह गाँव है, शहर नहीं
सोया है जगा नही
कोई अनहोनी घटना भी तो नहीं घटी
यहाँ
कि देश के या प्रान्त के
नक्शे पर छा जाता

यह गाँव
इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं बना

प्रगति के नाम पर
बस रेल गुजरती है
जमा हो जाते हैं
ट्रेन की पटरियों के दोनों तरफ
पत्थर की गिट्टियों के चौके
रेल के क्वार्टरों की बगल में
अभी पुराने पत्थरों के खण्डहर बाकी हैं
घोड़े को पछाड़ते देवता की
मूर्ति जिन्दा है यहाँ

गाँव के छोर पर
मन्दिरों की छतरियाँ
देवताओं की शरणस्थलियाँ
खड़ी हैं खेतों में
जिन पर उग आये हैं बड़े-बड़े पेड़
लेकिन मूर्तियाँ ?
वह कब चली गयीं
पता ही नहीं चला गाँव को

मूर्तियाँ जाने किन देशों में
सजी-धजी पड़ी हैं
गाँव नहीं जानता
गाँव में खाली है
उनका आसन
जिसे नहीं भर पाया आज भी
यह गाँव
देवताओं के लौट आने का

'भरम' पालता
यह गाँव

मूर्तियों ने इतनी प्रगति की
देश की सीमाएँ तोड़ डालीं
इस गाँव के लोगों ने अभी तक
गाँव की सीमा ही नहीं छोड़ी
इसलिए हर ट्रेन रुकती नहीं है यहाँ
एक ही ट्रेन दो बार रुकती है
एक बार आते
एक बार जाते!

'खजुराहो खजुराहो खजुराहो'

मानव की
व्यक्तिगत, सामूहिक, सामाजिक
प्रवृत्तियों, आकांक्षाओं, पराकाष्ठाओं का
मुखर-गीत
पत्थरों की वंशी पर गाता
'खजुराहो खजुराहो खजुराहो'

पत्थरों पर उभरते आकार
शिल्प साकार
बारीकियों, सूक्ष्मताओं को पकड़ते
पत्थर
मूरतों की सूरतों से झाँकतीं
सीरतें
छेनी की पैनी नज़र पर फिदा होकर
आप से आप खुल गईं
सदियों के बन्ध तोड़
पत्थरों पर जड़ीं
मुस्कानें
पीड़ा हिल गईं

आनन्द की अंतिम सीमाएँ
प्रेमातुर कल्पनाएँ
आसक्त अबोध चेष्टाएँ
यौवन की दहलीज लाँघतीं
प्यास
शृंगार के शीशे तोड़ते
हास
ममता का दूध पिलाती
माँ
युद्ध के नगाड़े के गरजते
नाद
मंदिर के नाचते-थिरकते
बोल
मयूरों के चीत्कार
अनुभूतियों, भावों, भंगिमाओं की
उन्मत्त
उल्लसित
अभिव्यंजना
सब के सब पथराये से खड़े
मानो शाप से किसी के
जड़ हो गये
शायद किसी लावा की राख से ढंक
जहाँ के तहाँ
भस्म हो गये
या कि नये कोबाल्ट बम के प्रभाव से
खड़े-खड़े उठते-बैठते
चलते-फिरते मृत हो गये

चेहरे पर मौत के हाव-भाव लिये-लिये
सदियों से हवा के थपेड़े खाकर भी
हिल नहीं पाए

पर गीत की यह लहर
यह धुन, यह लय, यह स्वर
शाश्वत है
लहरा रहा समय की सतह पर
इतिहास की शिलाओं से
टकरा रहा
भूत, भविष्य, वर्तमान
भेदकर
शायद जड़ होने के क्षण से
पहले ही
निकल चुका था
स्वर
वंशी के छिद्रों से बाहर
वह आज भी सुनाई देता है
गाता है
'खजुराहो खजुराहो खजुराहो'!

चाँदनी

रात स्टेशन पर
एक नन्ही-सी
चाँदनी डिब्बे में चढ़ आई
माँ के साथ

चाँदनी ने आते ही सवालों की
बौछार लगा दी
नन्हे-नन्हे सवाल
तारों जैसे छोटे-छोटे
जिसके जवाब
आकाश गंगा की लम्बाई
छूते
जिनके अर्थ
उस ब्लैक होल की गहराई तक
पहुँच जाते

मेरी कहानी का अर्थ पूछ रही थी
हिन्दी में लिखी कविता को
'जैक एंड जिल' पढ़ रही थी

उसकी माँ
बार-बार ताकीद करती
'आन्टी को डिस्टर्ब मत करो'
कहती
चाँदनी को टोकती
पर चाँदनी थी
कि पूरे डिब्बे में
खिलखिलाती फैल रही थी
मेरी कहानी की इबारत
उसके आगे छोटी पड़ रही थी

चाँदनी चाँदनी
जिसका नाम था स्तुति
मैंने सुना था श्रुति
श्रुतिपटों में
तुतलाती हँसी घोलती
मेरी जबान पर
स्तुति बन कर
आ बैठी

मैं चाँदनी स्तुति-श्रुति के बीच
भूल गई थी सब कड़ुवाहट
वक्त की!

एनो प्रश्नानिया

एल्पस की तराई छोटे-छोटे गाँव
छोटे-छोटे घर, छोट-छोटे ठाँव
प्रश्नों के धूम्र-छल्ले फेंकतीं आकाश में
चूल्हे की चिमनियाँ
अधर में टाँकते बादलों के हाथ
वाक्य
रात लीकती बे आवाज़ पुच्छल तारों की टूटन
टूटन का शब्द आखर बन
जब फूटता, पौ फट जाती
टूट जाता रोशनी का सैलाब
भोरे-भोरे भिनसरे उनींदी बोझिल आँखों से
दुनिया दुहराती-
'एनो प्रश्नानियाँ', 'एनो प्रश्नानियाँ'
पवन हहराता, पात थरथराता
काल को पकड़-पकड़ पूछता
कल भोर होगी?
शबनम की आंख में
सूरज कौंधता!

कोई सदियों में कोई क्षणों में

कोई सदियों में इंच भर उठता
कोई सहस्त्राब्दियों में मिलीमीटर
कोई वर्षों में
तो कोई सिर्फ
महीनों
दिनों
घंटों
और क्षणों में
बढ़ता

सहस्त्राब्दियों में मिलीमीटर भर बढ़ पाने की हताशा से
सदियों में इंच भर उठ पाने की वेदना से
घुटती धरती के माथे पर पड़ी शिकन
बनी पहाड़
चिन्ता से घुलता दर्द उसका
जब-जब रिसा
दरियाओं के बांध तोड़
सैलाब बना

क्षण-क्षण जन्मी
तत्क्षण मिटी

बुलबुले की आभिशप्त जिन्दगी
अमीबा-सी
जीने के साथ लिए मुत्यबोध
गुमनाम गलियारों में खो जाती
पानी का रुख तो क्या
उसका रंग भी नही बदल पाती
मन छूने की बात तो दूर

आदमी का कद
उम्र के साथ बढ़ता उठता
आ रुका
यौवन के ज्वार पर
उसके कद पर न लगती 'गर रोक
भेद-भेद देता वह प्रकाश-वर्ष
बस पृथ्वी पर नज़र आते उसके
पाँव
कुचलते रौंदते अपनी ही सन्तानें

उसका सर बढ़ते-बढ़ते भेद देता गगन-गंगा
या
छिन्नमस्ता की तरह
छिन्नभिन्न हो बिखर जाता
फिर शायद
आदमी डूब जाता खुद ही किसी ब्लैकहोल में

डयनासोर की परम्परा रोकने के क्रम में ही
शायद
प्रकृति ने रोक दिया
आदमी का बढ़ता कद
शायद पृथ्वी को चिरनूतन

चिरयौवना रखने की
नीयत से

विकास पर विनाश का प्रतिबन्ध लगाया
ऊब से बचने के लिए
जड़ा था शायद
जीवन पर मृत्यु का पैवन्द

पर
कल्पना का कद
रुका नहीं
बंधी नहीं
रुकी नहीं
उसकी गति।

तुमने अपनी ईजल समेट ली

तुमने एक सपना रचाया था
सजाया था
उसके गिर्द
तुमने कल्पनाएँ रची थीं
प्यारी-प्यारी बातें गढ़ी थीं!
पौराणिक कथाओं से बिम्ब
परियों से शब्द
पंखों से रंग
पत्थरों से आकार लेकर
तुमने एक चित्र रचा था
बुत गढ़ा था!
तुम्हीं चितेरे, तुम्हीं छेनी
और उस पर तुम अपने ही सपनों का अपना ही
चित्र आँक रहे थे अपनी ही मूर्ति गढ़ रहे थे
उसका नाम धर कर!

चित्र पूरा हुआ, मूर्ति खड़ी हो गई
तो तुम्हारी उम्मीद के विरुद्ध
वह उस पर उकिर आई

जो तुम्हारी समझ और सहन
दोनों के बाहर थी

तुम अपने को देखने के अभ्यस्त
उसकी पुतलियों में
अपनी नज़रें खोज रहे थे
तुम अपनी मुस्कान पर मोहित
उसके होठों में खोज रहे थे
अपनी हँसी
तुम अपना चेहरा देखने को व्याकुल
उसके मुँह पर टटोल रहे थे
अपनी छवि
तुमने सपने गढ़े थे अपने
पर तुम्हारी कूचियों से वह उभर आई
तुम्हारी कल्पना की उड़ान में
तुम्हारे पंखों पर
वह कहीं लदक गई!

तुम्हारी बातें
तोता-मैना की कथा-सी
रोज एक ही इबारत दोहरातीं
जीवन की कथा के बाहर की चर्चा-सी!
तुम्हारे शब्द परियों से पारदर्शी
पारे से तरल
ठोस मिट्टी के रंगों की
पकड़ से बाहर
पहचान से दूर
पौराणिक कथाओं के बिम्ब से
महलों के खंडहरों में भटकते
समय के अभिलेख थे
जो वर्तमान को नहीं ढंक पा रहे थे!

वर्तमान को ढंकने के लिए
चाहिए ताज़ा रंग
जो खून से ही मिल सकता है
मुर्दा यादों पर ही तस्वीरें रचने में पटु
मूर्ति गढ़ने में माहिर
यादों को ढोने के आदी
अपनी सूरत न देखकर
घबरा उठे

तुमने जो रंगों से भरा प्याला
मुँह पर दे मारा था
रंगीला था, कोमल था
तुमने जो छेनी फेंकी थी ना, तेज़ थी, नुकीली थी
छोटी थी, नाजुक थी
पर चोट करने में घातक थी
तस्वीर हिल गई इस बार
रेखाएँ हट गईं, घूम गईं!

तुम जिधर कूची फेंकते रंग भरी
लकीरें सरक जातीं
तुम रंग उड़ेलते खीझ कर,
तो लकीरें धब्बों के नीचे चू जातीं
और देह का कोई ना कोई कोना
उभरा ही रह जाता
उघरा ही रह जाता
मिट नहीं पाता!
ऊब कर
तुमने कैनवस ही फाड़ डाली
यह कह कर कूची तोड़ डाली
'यह तस्वीर तो केवल अपने ही रूप से
प्यार करती है

आपहुदरी है
कैनवस पर अपने आप उभर आती है
तोड़ डाली छेनी
यह कहकर
'यह मूर्ति तो अपना ही रूप गढ़ती है
बोलती है, डोलती है
और सपनों में सशरीर जागती है!
चलती है, जड़ नहीं
मिट्टी का लोंदा नहीं
कि जैसे चाहो ढाल लो!'
और तुमने अपनी ईजल समेट ली!

तुमने एक-एक कर शुरू किया चित्र का अंग-भंग करना
सबसे पहले तुमने
मिटाए उसके पाँव
जकड़ी उसकी गति
एक बड़ा-सा धब्बा घृणा का
पोत उसकी जाँघों पर
मथ दिया उसकी कोख़ पर
उसके दूध में घोल दी स्याही!
फिर एक-एक कर
उसके होंठ, आँखें, पुतलियाँ, पलकें
केश-कान, माथा भवें
गोया कि
पूरे चेहरे पर
कूची फेर, छेनी से गोदने लगे चेहरा
अपनी पुरानी आदत के अनुसार!

गढ़ना-तोड़ना
खेलना-मिटाना तुम्हारी आदत है!
वह ही पागल थी

जो तस्वीर अँकवाने
मूर्ति गढ़वाने
बैठ गई तुम्हारे सामने नंगी होकर।

इस बार पर
तस्वीर की रेखाएँ
मूर्ति की भंगिमाएँ जिंदा हो गईं!
उनकी आत्मा डोल गई
प्रतिकार में काँप गई फितरत!
तुमने अपनी हथौड़ी-छेनी बाँध ली!

तुम उसे वह तुम्हें
अपने आप को प्यार करने का दोष मढ़ते रहे
तुम्हारे रंग चुक गए!
उसकी लकीरें फीकी पड़ने लगीं
आकृतियाँ भरकने लगीं
परिवेश बदल गए!

बलात्कार

दो नंगे स्तन उभरे
वक्ष पर फटे चिथड़ों में से झाँकते हुए
दो सख्त हाथ उन्हें मचोड़ते,
एक नन्हा सा हाथ उठा प्रतिकार में
हटा दिया गया
एक बदचलन हँसी
एक भयभीत सिसकी
एक भगदड़ एक पकड़
एक फड़फड़ाहट-छटपटाहट
एक लपक एक झपक
गले से निकली
मुँह में घुटी चीख़
दाँतों में भिंची जीभ
हाँफती हवस
ठंडी देह
गर्म साँस
मृत्यु के साथ
बलात्कार!

नोट: 1982 में मिजोरम जाने पर एक मिजो के मुंह से हर रोज़ घटने वाली ऐसी घटनाओं पर आधारित कविता।

अकेलेपन के चमगादड़

मेरे सपनों के दायरे छोटे हो गए
वे सिमट रहे हैं
केले छीलने से लेकर
नींबू काटने तक
चादर की सिलवट निकालने से लेकर
चप्पल सहेजने तक
मेरी हर हरकत में
तुम्हें एक नयापन
एक नया अंदाज़
नज़र आता है
तो मुझे भी
हर छोटा काम करने में
बड़प्पन नज़र आता है

मेरे सपनों का दायरा गहरा हो गया है
और भीतर ही भीतर
कहीं अन्तरतम परतों में
वह उगने लगा है
मेरी उड़ान सिमट गई
नज़र बिंध गई, बंध गई

इसलिए मैं अन्दर ही अन्दर
नई रौशनी से सराबोर हो उठी हूँ
जो अँधेरे में
अकेलेपन के चमगादड़ों को
दुबका देती है
छतों के कोनों में
भगा देती है
रौशनदानों के बाहर।

नोट : 1982 में दीमापुर में ज्ञानेन्द्रपति के साथ

कतार से अलग

मैं संगीत के आरकेस्ट्रा में
बेसुरी धुन बन कर बज उठी हूँ
सधी मार्च-रत जुगल पग-ध्वनि में
कतार से अलग
पदाघात करती चल रही हूँ
ताकि अपनी पहचान रख सकूँ
अपने भूगोल में जड़ी
समय के फ्रेम में मढ़ी
वयातीत तस्वीर सी
खड़ी हूँ
दरवाज़े खोले
तेरे अंदर आने की प्रतीक्षा में

मुझे तो
सदियों से अकेला रहने की आदत है न
घाटियों सी मैं
प्रतीक्षा-रत हूँ
अकेली बहते रहने को
हवाओं-सी अभयस्त

मेरे गीत के
प्रथम और अन्तिम अक्षर के बीच
अनेक शब्दों की दूरी है
तुम्हारे 'सा' को
मेरे 'सा' तक पहुँचाने के लिए
'सप्त-स्वरों' को लाँघना जरूरी है!

नोट : 1982 दीमापुर असम में ज्ञानेन्द्रपति के साथ यात्रा में

सन्दक-फू

मैं ऊँचाइयों की एक चट्टान हूँ
पर गहराइयों की पहचान हूँ
जिस पर
समय की सीलन
काल की काई
हवाओं की परछाईं
जमी है

मेरी परतों में
इतिहास के कफ न ओढ़ कर
समय के कंकाल दबे हैं
और इंसान के सृजन के चिह्न
मेरे वक्ष पर लिखे हैं
मेरा आकार, मेरा रूप नहीं
मेरे प्रकार, मेरी पहचान नहीं
मेरा रंग, मेरा अपना नहीं
मेरा रूप, कोई सपना नहीं

मेरे आकार सदियों की पदचाप ने गढ़े हैं
मेरे प्रकार जीवन्त क्षणों की

अनगिन सिहरनों से बने हैं
वनस्पति ने जल-जल कर
अपने दाहक दागों से मुझे जलाया
आकाश ने जग-जग कर
बरखा ने रो-रो कर
अपनी बूदों से
मेरे अंग-अंग गढ़े हैं
मैं बिछी हूँ
उठ बैठी हूँ
खड़ी रही हूँ
पर चली नहीं
चूँकि मेरी गति
समय ने छीन ली
धरती ने खींच ली

मैं पड़ी हूँ कफ न-सी
प्रकृति के
जीवन के
वनस्पति के
शवों को लपेटे
साँसों का गला
मैंने सदियों पहले घोंट दिया था
धड़कनों की लय
मैंने कभी सुनी नहीं
सृष्टि के बाद से ही
जिन्दगी के अहसास
जल कर ढेर हो गये
उसके अम्बार ही
मेरा रूप हो गये

मैंने सागर की
गहराइयों को

तनहाइयों को
छुआ है
उसकी लहरों ने मुझे
चूमा है
धरती के लावाओं की आग ने
उगला है मुझे
बन्दर ने आदमी बनना सीखा है
मेरे ही सामने
आदमी का आदमियत खोना
भी
मैंने जाना है
हिरोशिमा के भीषण कंपनों से

सभ्यता की पगडंडी पर
मैं मील पत्थर-सी पड़ी रही हूँ
संस्कृति की हर डगर
मेरे पास से होकर गुजरी है
पर मुझे छुआ नहीं
मैं अछूती ही रही
व्यवस्था की गिरती मुंडेर
बदलाव की जकड़ती नींव
सब मेरे ही रूप हैं
पर मैं सरकती नहीं
लोग मेरे पास से गुजरते हैं
मुझ पर चलते है
केवल देखती हूँ मैं
मेरी परतों में कहीं-कहीं
पौधे उग आये हैं
शायद शव मर गये
और प्राण जी उठे हैं
पर ये उगे पौधे

यह रेंगती काई भी
एक दिन पत्थर बन जाएगी
पत्थर
जो कभी मरता नहीं
क्योंकि वह कभी जिया नहीं
जो केवल है
कस्मै के 'क' सा
अस्ति के 'अ' सा
पर नास्ति नहीं

मैं टूटती हूँ, मरती नहीं
बढ़ती हूँ फैलती हूँ सिमटती नहीं
मुझे केवल धरती निगल सकती है
केवल लावा के ही होंठ
पी सकते हैं मुझे
हवाएँ गढ़ती हैं मुझे, शिल्पी नहीं
मेरे पाँव में सभ्यताएँ दबी हैं
मेरे माथे पर आकाश मढ़ा है
मैं अजन्मी अ-मरी
एक चट्टान हूँ
'संदक-फू' की!

नोट : 1982 असम यात्रा के दौरान

प्लेटफार्म पर

प्लेटफार्म पर
पटूसों से घिरे-झूमते
चटखते, फूले पलाश-से तुम

या कि
बीहड़ों में, वीरानों में
कंटीले करीलों में दूर से नज़र आते
सरू से सरूरते तुम

नहीं तो जंगलों में
महकते महुआ से भरे-भरे
लदे-लदे
डालों के घेरे बाँधे
इन्तज़ारते तुम
टपकने को टोकरियों में
मझियाइनों की
जो आधी रात में
झाड़-बुहार कर लीप-पोत कर,
बैठ
जाती हैं

कतार-बद्ध हो तीसरे पहर से ही
लीकों में फुलस्टाप-से
जहाँ गति एक पल को थम जाती है
रुक जाती है
पटरियों में सिग्नल-से
जहाँ दृष्टि थिर हो जाती है
मेरी नज़रों को नियंत्रित करते तुम!

मैं निहार रही हूँ
निहार रही हूँ
अपनी नज़रों का खो जाना
प्लेटफार्म के उन पत्थरों पर
जहाँ से हो कर तुम
गुज़र रहे हो

देख रही थी
पास से गुजरती भीड़ के
सांसों में से उठता बादल का एक टुकड़ा
जो अलग से चला आ रहा था
मैं घिर गई उस धुएँ के बादल से
बादल के धुएँ से!

बयार

पात को झिंझोड़ कर
डाल को मरोड़ कर
इस तरु को तोड़ कर, उस तरु को छोड़ कर
हाय! बह गई बयार
दर्द की हुलार ले

कली-कली के हास ले
बौर उन्माद ले, निर्झरों से नाद ले
पत्थरों के साज पे
हाय! बज गई मल्हार
प्यार की पुकार से

लहरों से खेल कर
पाटों को ठेल कर, बाँधों को ढेर कर
लीकों को घेर कर
छलक-छलक बह गई जलधार
मौन-मुखर रार दे

हाय बह गई बयार
दर्द की हुलार ले

हंस की कतार

कहीं रौंद न दें सभ्यता के चरण
प्रकृति को
हवा को होम न कर दें कहीं युद्ध के धुँए
शोषण के अट्टहास छीन न लें कहीं गीत
खूंखार अहसास कहीं
बिन न लें हिम्मत जीस्त से
कहीं सूरज को
पी न जाएँ जहरीली गैसें
एल्पस की किरणों के मुकटवाली
सुरमयी बर्फीली नोकदार
चोटियों को
कहीं जला न दे एटमी आग

सोच-सोच सहम उठी
हंस की कतार
दहल-दहल काँप रही
झील में
पानी की आँख!

तुम साथ देते तो

तुम साथ देते तो मैं
सात समुन्द्रों को पीने की ललक
अगस्त्य मुनि से
छीन लाती
ब्रह्माण्ड में धरती-सी
अपने अक्ष पर
तुम्हारे गिर्द घूमने का
दम भरती
शनि और मंगल के
रथ पर चढ़
सूरज की परिक्रमा
कई-कई बार
कर आती !

तुम साथ देते तो मैं
हिमालय के शिखर पर चमकी
पहली किरण की ऊष्मा
सहेज लाती
समुद्र की तलहटी में
गहरे, बहुत गहरे

तैरती
मछलियों की आँख की
पुतली से
प्यार का मोती
चुरा लाती!
'लेह' में
बहुत-बहुत गहरे बहती
'सँगे-ख्वास'[1] की हरी-हरी धार के
हहराते विद्रोही-गीत
हर लाती!

तुम साथ देते तो मैं
महाभिनिष्क्रमण पर निकले
गौतम को
लौटा लाती
कई-कई बार
द्रौपदी को आम्रपाली से
बदल कर
इतिहास से युधिष्ठिर को
हटा आती
लद्दाख के बौद्ध मंदिरों में रची
मुक्त प्रेम-कथाओं-सी
गुप-चुप
एक प्रेम-प्रसंग
जी आती!

तुम साथ देते तो मैं
पाम्पई की राख में
दबी
हिरोशिमा के विनाश से
बची

जिजीविषा बीन
टुकड़ा-टुकड़ा मनुष्यता में
कई-कई बार
बाँट आती

प्रेम से लीप
पृथ्वी का आँगन
सँवेदना की अल्पना
पूर आती

बँजर धरती पर प्यार के बिरवे
कई-कई बार
रोप आती
तुम साथ देते तो...!!!

---

1. 'सँगे-ख्वास' : सिन्धु नदी

नोट : 20-11-94 पेरिस से क्यूबा जाते हुए हवाई जहाज में

पेकची के पत्ते सा

पेकची के पत्ते सा
डोले है सागर
मन मोरा घुरी-घुरी
होले है पागल
पकल महुआ की
गंध है 'मता' रही
मोर बगिया की याद मोहे आ रही
मोर 'सहिया' की याद मोहे आ रही

'फींच' रही बेर-बेर
लहरों की चदरिया
बालू के पाटों पे
सागर धोबनिया
झागों की चूनर
उड़ी जा रही
घाट-पोखर की याद है सता रही
मोर 'सहिया' की याद मोहे आ रही

सूरज के चूल्हे पे
सागर बिराजता

उफन-उफन जात है
देगची में भात-सा
उबल-उबल
'माड़' गिरी जा रही
घर आंगन की याद है जरा रही
मोर 'मितवा' की याद मोहे आ रही

गिरल-पड़ल जात है
दारू-पियाक सा
हुमच-हुमच आत है
ओझा के हाथ-सा
बारी-भुतवा की
याद है डरा रही
बर-पीपर की याद चमचमा रही
मोर 'सहिया' की याद मोहे आ रही

झूम-झूम डोलता
कारे-कारे नाग सा
बेर-बेर डंस रहा
जैसे हो बावरा
मोरे तलुवे में
'कनकनी' जना रही
मोर देहवा में
झुरझुरी है आ रही
देखा-देखा जहर चढ़ी जा रही
मोर मितवा की याद मोहे आ रही!

फींच : धो, कनकनी : सुन्न होने का अहसास

नोट : मुम्बई में सीता ने जब मेरीन ड्राइव पर समुद्र को देख कर कहा 'मैय्या पेकची के पत्ते सा दीखे है' उसी टिप्पणी पर यह कविता।

तुम्हें पाना

पुरानी डायरी के पन्ने पर
न जाने कब लिखी
भूली-बिसरी कविता पढ़कर
जो आनन्द मिलता है
खाली बटुए के फटे खानों में
अनायास
सौ का नोट पाने पर
जो हर्ष होता है
भारी भीड़ में खोये
बच्चे को अनायास पा
जो अहसास होता है
खोई हुई साड़ी के अचानक
बक्से की तल्ली में मिल जाने पर
जो आश्चर्य होता है
वह आज
तुम्हें पाकर हुआ!

फेनिक्स-वे

सूरज ने समुद्र में रास्ता बनाया है
जो कमरे में मुझ तक चला आया है
तपिश से
सुबह-सुबह मुझे दिन का अहसास दिलाता
रोशनी से मेरे पाँव चमकाता
दूब की आँखों में भर कर अपनी दमक
जंगल लहका आया है
सूरज ने समुद्र में रास्ता बनाया है

यह रास्ता
पोर्टब्लेयर जेल तक जाता
काले पानी को नकारता
अनगिन छींटे रौशनी के एक संग बिछा जाता
बह उठता समुद्र में रोशनी का पुंज
या पालतू-सा
रोशनी का समुद्र
शान्त बिछ जाता
उनकी यादों की राह में
जिन्होंने जलकर रोशनी पैदा की
इन काले पानियों में

साबित किया जिन्होंने
'जिन्दगी की आग ज्यादा चमकदार है
चिता की आग से'
जिसे
समुद्र का काला पानी भी
नहीं निगल सका
जिससे रौशन है समुद्र
सूरज ने समुद्र में रास्ता बनाया है

तट के बगल-बगल
सटे-सटे सायों के
काले सलेटी रास्ते लहराते
पेड़ों के संग डोलते
'फेनिक्स-वे' के निचले तल्ले पर
रौशनी के कोण बनाते
सूरज की गिरफ्त से
बाहर निकल जाते
जलकणों के तारे,
लहरा-लहरा जाती
रौशनी की धार
और लो!
'फेनिक्स-वे' के पाँव में उग आया
सूरज का गोला
झलक-झलक कहता
'यहीं हूँ - यहीं हूँ यहीं हूँ'
सूरज ने समुद्र में रास्ता बनाया है

फिर हर जगह फर्श पर
कुर्सी के हत्थे पर
कारपेट के पेट पर
चिपक गया सूरज का गोला

दूर
लहरों की सतर के ऊपर बिछी चाँदी के पीछे
सोना ही सोना तिर आया है
शायद
सोन-मछलियाँ जमा हों गई हैं सारी की सारी
शायद
मुख्य-भूमि पर उगे गेहूँ की फसल का रंग
बह आया है
लो! देखते ही देखते
मेरी पुतलियों में भर गया है सोना
पलकों में चाँदी
सूरज ने समुद्र में रास्ता बनाया है

कुर्सी छोड़ मैं आ गई बाहर, कि
भर लूं अपनी साँसों में
सूरज की राह में बिछा सोना-चांदी
सोख लूं सब ताप
लो!
मेरे रोम-रोम से
चाँदी का पानी पसीना बनकर बह आया है
सूरज ने समुद्र में रास्ता बनाया है!

नोट : अंडमान द्वीप में फेनिक्स-वे रेस्ट हाऊस में लिखी गई कविता।

न माना

मैंने आगे बढ़ना चाहा
पुरुष ने हाथ थाम लेने को कहा
मैंने मना कर दिया
तो उसने ठोकरें लगायीं
लड़खड़ाई, गिरी,
उठी
और आगे बढ़ी
उसने
आगे बढ़कर रास्ता रोक लिया
मैंने धीरे से उसका हाथ हटाया
और आगे बढ़ गयी

उसने जोर से
थप्पड़ लगाया
आँखों में आसू भर कर उसे देखा
और चल दी-अकेली, मैंने आगे

वह सह न सका मेरी स्वतंत्रता
बाँहों में बाँध लेने को मुझे
प्यार और चुम्बनों का

ताना-बाना बुना
जाल बनाया
और फेंका मेरे ऊपर
उसने
कि उम्र भर उसके भीतर
उसकी सिलवटों में लिपट-लिपट
मेरी बेबस आत्मा काटती रहे चक्कर
और मर जाए घुट-घुट कर

मैंने झेला वह वार भी
और निकल आई व्यूह से बाहर

तब उसने
मुझे आरोपों के दल-दल में
धकेला
ताकि उसका
उस पुरुष का
जिसने आजतक
संसार में कायम रखी है अपनी 'सुपरमेसी'
का मैं मान लूं लोहा

पर मैंने उसे
न माना
न माना
न माना!

मैं तो मृग-तृष्णा हूँ

मैं तो मृग-तृष्णा हूँ
बाहर से भरी-भरी
अन्दर से रीती हूँ
मधुर-मधुर भासती
पर कड़वी तीती हूँ!
मैं तो मृग-तृष्णा हूँ
एक कथा बीती हूँ
युग-युग से रीती हूँ

भरी-भरी प्यालियाँ
नयनों की दीखतीं
खोज में अनन्त की
निज-रस उड़ेलती
राहों की कंटक हूँ
मंजिल की प्रीति हूँ
मैं तो मृग-तृष्णा हूँ
एक कथा बीती हूँ
युग-युग से रीती हूँ!

आस ही प्राण मेरे
आस ही गात हैं

बढ़ने की चाह सदा
सहते पद-घात हैं
पल-पल में जीती हूँ
पल-पल में मरती हूँ
एक कथा बीती हूँ
युग-युग से रीती हूँ!

मन के आकाश को
मोह-मेघ पाश से
बाँधती
जब कामना की
बयार
स्नेह की किरण
खोजती राह अपनी
बीथियों में क्षितिज की अपार

मेरी चाह की लगन तब
परस मृग-तृष्णा के कण
आस के स्वर्ण से भरती
मन का सदन,
और
सहमते यथार्थ के
तिमिर को
दूर कहीं... दूर
गर्त्त में है फेंकती

पर मैं
अनदेखी-सी
प्रीत की
छाया को, मात्र एक बार
छूने को

भागती
मृग-तृष्णा हूँ
मृग-तृष्णा की खोज में
युगों की
राह पर
भटकती
झींकती
थकी-थकी रात की
अनकही
कहानी
कहानी-सी
प्रातः की
आँखों में आंसू-सी डोलती

फिर भी मैं
उत्सुक हूँ
मिटने की
चाह लिये
जीवन के
छोर पकड़
साँसों को तोलती
मैं तो मृग-तृष्णा हूँ
एक कथा बीती हूँ

मैं तो ठिठोली हूँ
अनबोली प्रीत की
टेर हूँ प्राणों के
अन्तिम संगीत की
कामना हूँ
चाहना हूँ
बिछुड़ों के मीत की

सागर की लहर हूँ
उठती हूँ
गिरती हूँ
अमृत की आस में
विष को भी
पीती हूँ

फीकी हूँ
रीती हूँ
मृग-तृष्णा की
कामना से
मरुस्थल में
बीती हूँ

मैं तो मृगतृष्णा हूँ
एक कथा बीती हूँ
युग से युग रीती हूँ
कड़वी हूँ तीती हूँ!

एक सेतु

कुर्जी अस्पताल
और बाँसघाट के बीच
केवल एक सड़क का फासला
और इस सड़क का नाम है
जिन्दगी

जिन्दगी
जो उद्‌गम और मंजिल के बीचो-बीच
निरंतर चलती है
जिसके वक्ष पर
असंख्य कदमों के चिह्न
धूल बन उड़ गये
पद्‌चापों के स्वर
मुखर हो-हो गुम गये

दस हाथ चौड़ी सड़क
मीलों-मील लम्बी सड़क
गजों की चौड़ाई में आ सिमटी सड़क
कुर्जी और बाँस-घाट के बीचो-बीच
फासला पाटता एक सेतु
एक नया जन्मा शिशु!

इतनी जिजीविषा

अब बन्द आँखों में ही
किरणों की किरचें चमक-चमक
रचने लगी हैं
रोशनी का गोला
आँखें खोलकर उन्हें देखूँ
तो शायद जलने लग जाए सूरज
लो
रोशनी की ये लकीरें
डायरी में उतर आई हैं

साँझ की जद्दोजहद
रात भर इन्तज़ार करती है
सुबह की विजय का
पर हारती नहीं
रात से
इतनी जिजीविषा
इतनी आस
इतना विश्वास
अदम्य हौसला

सूखने नहीं देता
कलम की स्याही

रात की स्याही लेकर मैं
सुबह का गीत लिख लेती हूँ
तारों की कणियाँ ले कर
सुबह की रोशनी रच लेती हूँ
टेसू की चिंगारी से जला देती हूँ
अँधेरे के जंगल

पर हारती नहीं हूँ
न हारूँगी मैं
हारना मेरी नियति नहीं!

---

* 11.3.96 रेल में नागपुर से लौटते हुए राउरकेला स्टेशन के बाद ।

तुम्हारा समर्पण

आज अचानक एक एहसास
बन गया दर्द
अनजाने ही कराह उठी मैं
खोजती दर्द की पहचान

उभरा एक चेहरा
उभरे वे क्षण
कोमल से कोमलतर होता गया
तरल-तरल चेहरा
मादक वे क्षण

अनावृत्त आत्मा को
आँखों में भर
समर्पित हो गये तुम
गल-गल
ढल-ढल
घुल गये मुझ में
सदियों की प्यास छिपाये
तुम्हारी नजर
बेबस, उद्धत, आतुर

समा लेने को अखिल विश्व
अपने पैमाने में

एक प्रगाढ़ स्पर्श

एक कराह
एक हिचकी
एक आघात का अनुभव
आदि और अन्त में निहित
सम्पूर्ण सुख-स्रोत
दर्द की चुभन के साथ
स्वीकार किया मैंने!

मेरी उम्र के वीरानों में चहक उठा पक्षी

तुम्हारी महक मेरी देह में समा गई
अब मैं अकेली नहीं रही
मेरी कोख़ में कहीं
लहरें कसक उठी हैं
रोशनदान से आती
सुबह की किरणों-सा
तुम तैरने लगे हो मेरे कमरे में
सारा दिन उसे घेरे रहते हो
मेरी उम्र के वीरानों में चहक उठा है पक्षी
डैने फैलाए मैं
उसके साथ उड़ने लगी हूँ
जी चाहता है
हरियाली ओढ़ लूँ
लेप लूँ देह में
क्योंकि यह हरियाली तुम्हारी ही जैसी
कोमल है धान के बिजड़ों से
बीन कर हरियाली की हँसी
तुमने अपने होंठों पे जो मथ ली है
काश! मैं उसे पीने में सक्षम होती!

'ज्ञ' के लिए ! 28.07.82

तुम पास होते तो

तुम पास होते तो
ओजोन का सुराख मुँह नहीं खोलता
बैंगनी किरणों का खतरा
सिर पर न डोलता
धूमकेतु बार-बार
टकरा कर न टूटता
मरुस्थल में पानी का
सोता न सूखता
नदी से सागर तक प्रेम यात्रा की
अमर-कथा
लिखती मैं बार-बार

प्यार की अथक कथा
प्रकाशवर्षों-सी
जीती मैं बार-बार
जूलियट और लैला-सी
मृत्यु को
वरती मैं बार-बार!

20.11.94 पेरिस से क्यूबा जाते हुए

याद

आज तेरी याद से जब
गीत के स्वर न बजे
तो लगा ऐसा कि
जीवन की सरी सूखी हमारी

स्नेह-सरगम की सुहानी
गूँज भी थम-सी गयी
मान की लय-लहरियां भी
मूक होकर मिट गईं
आज तेरे दर्द से जब
गान मुखरित न हुए
तो लगा ऐसा कि
कविता की सरी सूखी हमारी

सिहरनों की कंपकंपी जब
सहम सहसा रुक गयी
वेदना की टीस उठ-उठ
तड़प-सी झट मिट गई
आज परिचित नाम सुन जब
प्रीत भी बहरी बनी
तब लगा ऐसा कि
भावों की सरी सूखी हमारी!

करिया पहाड़

रांची सीमाने करिया पहाड़
डटल खड़ा
पत्थर पर पत्थर साज ले
मथवा पर पत्थर के
बड़का पग्गर बाँध ले
ऊँचे
ऊँचे ही ऊँचे
चढ़ गेलय है
रोज़-रोज़
बतिया रहल है
ऊज्जर-ऊज्जर चरकी-चरकी[1]
गोर-गोर बदरिया से
उड़ती चिरैया से
धूप जैसन चकमक
दोपहरिया से
धूसर-धूसर धूल से

ए करिया पहाड़
रतिया में
पियर-पियर इँजोरिया[2] के

'गायत'[3] से साट-साट
चूम-चूम
तारंगन[4] के उकसाय देलेय है
ई इंजोरिया
ई करिया पहाड़
मोर जिया में कोय
'हैम्मर' मार देवे है
और मोर हथवा के 'हैम्मर'
तोर याद में
जोर-जोर पत्थर
तोड़े लग जावे है
पत्थर तोड़े लग जावे है।

---

1. चरकी : सफेद 2. इंजोरिया : चान्दनी?
3. गायत : देह 4. तारंगन : तारे

तू घर नाय एलय है

कहिने गेले है
केने-केने खट रहले है
ठिकाना भी तो नाय
लिखौले है
कौन कामख्या-कारू की
कुटनी के मन्तर में फँसाय गेलय है?
हम हेने घबराए गेलय है
तू घर नाय एलेय है

ईंट्टा-भट्ठा सिराय[1] गेलय
ई बच्छर भी खेत बिन जोते
बिलाय[2] गेलय
'कजरी' के भैंस बियाय गेलय
'मंगरी' के गाय गाभिन हो गेलय
'सुकरी' के बकरी
बिकाय गेलय
हमर दूध
सुखाय गेलय
बचवा बड़ हो गेलय

'बाबा-बाबा' कहके हकावो[3] है
पन तू घर नाय एलेय है!

टेसू टहक-टहक
मोर मन में रसम[4] लगाय देलय
सखुआ के गाछ के
ऊज्जर-ऊज्जर दाँत
दिखाय गेलय
महुआ 'कोताय'[5] गेलय
हवा झुमाय गेलय
हमरो मन
बौराय गेलय
हमरो 'गायत'[6]
खटैत-खटैत
सुखाय गेलय
पन तू अब हो घर नाय एलेय है!

---

1. सिराय : खत्म, 2. बिलाय : बरबाद, 3. हकावो : पुकारता है,
4. रस्म : आग 5. कोताय : पक गया, 6. गायत : देह

'एकले' ही हम रहे पर जिन्दगी भर

संग तो यूँ कारवाँ ही चल रहा था,
'एकले' ही हम रहे पर जिन्दगी भर
स्नेह का विश्वास लेकर
वायदों का 'पास'[1] लेकर
और चिलकती धूप से मृदु
परस का एहसास ले कर
हाथ तो पकड़े रहे सब कारवाँ में
बेसहारा हम रहे पर जिन्दगी भर

दृष्टियों की यवनिकाएँ शत
सुप्त-स्मित की उलझनें नत
प्रीत डोली संग थिरकती
हास-नूपुर की सधी गत
गीत तो गाते रहे सब सप्त-स्वर में
बेसुरे ही हम रहे पर जिन्दगी भर

दर्द के चीह्ने न साये
पीर के परिचय न पाये
फूल-खुशियों की महक के
रूप दामन में सजाये

हास तो देता रहा जग नन्दनों का
अश्रु पीते हम रहे पर जिन्दगी भर

कल्पना की डोर नापी
स्वप्न की सीमा न बाकी
गगन धरती पर झुका कर
स्नेह भरती सांध्य-साकी
चाव से भरता रहा निज अंक में जग
छिटकते ही हम रहे पर जिन्दगी भर

दृढ़ इरादे बाँटते हम
दूरियों को पाटते हम
पर्वतों-सी मुश्किलों को
चुटकियों से काटते हम
पास तो खुद मंजिलें ही आ गई थीं
नापते ही पथ रहे पर जिन्दगी भर

रात की बेहोश पलकें
दिवस की बा-होश परतें
काल के पग डगमगाते
सृष्टि-सम्पुट सरस ढलते
जाम तो यूँ खुद नशे ने ही भरे थे
होश बाकी ही रहे पर जिन्दगी भर

आस का आकाश बाँधे
श्वास में शत गान साधे
इन्द्रधनुष-सी जिन्दगी के
खोलती पट प्राण-राधे
दे दिया दामन तो अपना जिन्दगी ने
कफन सीते हम रहे पर जिन्दगी भर!

1. भरोसा।

रात एक युकलिप्टस

आदमी और पशु से पहले
पेड़ होते थे!
शायद उसी युग का पेड़
एक युकलिप्टस
रात मुझसे मिलने आया!
अपनी बाँहों की टहनियों से
अपनी उँगलियों के पत्तों से
वह रात भर मुझे सहलाता रहा!
उसकी
सफेदी ने मुझे चूमा
और उसकी जड़ें
मेरी कोख़ में उग आईं
और मैं भी एक पेड़ बन गई
धरती के नीचे नीचे!
अपने ही अन्दर-अन्दर!!

रात मैं एक घाटी बन गयी
जिसमें युकलिप्टस की सफेदी
कतार-बद्ध खड़ी थी
अपनी हरियाली से ढँके

अपनी जड़ों से मुझे थामे
झूम रही थी
और पृथ्वी और पेड़ों के
सँभोग की कहानी सुना कर
मुझे सृष्टि के रहस्य
बता रही थी!

बता रही थी
पृथ्वी ने आकाश को नकार कर
पेड़ों को कैसे और क्यों वरा
बता रही थी
गगन-विहारी और पृथ्वी-चारी का भेद
क्यों पृथ्वी ने कोख़ का सारा खजाना
लुटा दिया पेड़ों को?
वनस्पतियों को क्यों दिया
सारा सान्निध्य
कोमलता
रंग
ठण्डक
हरियाली
सब!
और आकाश को दी केवल दूरियाँ
मृगतृष्णा[1]
चमक
चहक, लेकिन पेड़ों को ही दी!
बता दी उसने
पेड़ के समर्पण की गाथा
जो टूट गया
सूख गया
जल गया
धूल में मिल गया

पृथ्वी का पत्थर-कोयला-हीरा
बन गया
पर उसकी कोख़ से हटा नहीं
उसी में रहा
हवा में उड़ा नहीं!

पृथ्वी का पुत्र
और पति
दोनों रहा
पृथ्वि-जाया और पृथ्वि-जयी
दोनों बना!

कैसे गुनगुनाऊँ

कैसे गुनगुनाऊँ
गीत की वह
धुन
कि गा उठें
अफ्रीका के काले-काले
जंगल
मुक्ति के गीत

कैसे आँकूँ
रेखाओं के
वृक्ष
कि उभर आएँ पोर-पोर में
पिकासो के चित्र!

कैसे टाँकूँ
सितारों के
झुण्ड
कि ब्रह्माण्ड के गोशे-गोशे में
लटक जाए
गगन-गँगा की लड़ियों का सच

कैसे पाऊँ
समय-शिल्पी से वह
हुनर
कि हवा की हरकत-सी
पानी की हथौड़ियों से
तराश दूँ
विश्व के हर तट पर
नार्वे और स्वीडन के
कटावों-का
कौतूहल

कैसे पढ़ूँ
सदियों से पगे मँत्र कि
वनस्पति समेटे हव्वा-सी
मुग्धा धरती बन जाए
क्यूबा का
'कार्लोल्यूगा'[1]
या
'माया सँस्कृति' को सदियों से ढाँपे बैठा
मैक्सिको का
काई भरा काला-काला
आदम-सा
जंगल

कैसे धरूँ
दो लाख वर्षों का धैर्य
कि रच दूँ
'ग्रैण्ड कैनियन'[2] की घाटी
शिला-शिला पर
नक्काशी
हवा से खींच दूँ लकीरें

पानी से बुत
तराश दूँ
धार से काट दूँ

पहाड़
बूँद-बूँद पत्थर फोड़
सुरँग-सी
समय को
लाँघ लूँ
गति को बुतों में बाँध दूँ
कैसे गुनगुनाऊँ
कैसे गुनगुनाऊँ?

---

1. क्यूबा में कार्लोल्यूगा एक ऐसा टापू है, जहाँ पृथ्वी अपनी भरपूर वनस्पति में लिपटी आज भी मूल अवस्था-सी शांत, नीरव, आदिम नजर आती हैं।
2. अमेरिका के रेगिस्तानी क्षेत्र में दो लाख वर्ष पुरानी नदी है ग्रैन्ड कैनियन, जिसकी धार और तेज हवाओं से पास के पर्वत इस तरह कट गए हैं कि वे पहाड़ नहीं, मूर्त्तियाँ, किले या चित्र से दीखते हैं। गढ़े-गढ़े से दीखते सीधे खड़े पहाड़ों की दीवारों से कई सौ फुट नीचे बहती नदी की धार, एकदम हरी-हरी कहीं शांत-स्थिर कहीं उत्ताल तरंगों में उल्लसित बहती तो कहीं झीलों का कटाव, अविस्मरणीय बन जाता है और पहाड़-नदी-शिला की इस शृँखला पर दृष्टि फिसल-फिसल जाती है।

20.11.94 पेरिस से क्यूबा जाते हुए हवाई जहाज में।

आकाश के गीत

धरती पर
काले पहाड़ों की अँगुलियाँ
आकाश की धुन बजा रही थीं
गा रही थीं ऊँचाई के गीत
दूरियों के राग

क्षितिज के कोने में भोर की किरण
मिलन का विहाग छेड़ रही थी
कहीं कोई पेड़ का टूटा तना
उकड़ूँ-सा बैठा
न जाने क्या सोचता-सा
तो कहीं
अँगड़ाई लेते पेड़
शाखा का उभार देख
अचानक ठिठके-से
उठते हाथ रुके-से
लाज के पातों के बोझ से
शाखा झुक गयी
'झुकी रह गयी'!

डाल्टेनगंज कवि सम्मेलन से धनबाद लौटते हुए बस में

अधलेटी

पर्वत की गोदी में
अधलेटी परछाईं ने
एकाएक उचक कर
लम्बी गर्दन उठाकर
हवा के होंठों से
पर्वत के माथे पर
घिर आई घटाओं की लट को चूम लिया
तुम्हारी याद आ गई
मेरी परछाईं अपने में सिकुड़ गई
सहम गई अकेली

सोन के किनारे बिछे सुनहले बालू को
लहरों ने उठ-उठ कर
बाँहों में भर लिया
और बहाकर ले गईं अपने साथ सहज ही
मेरी बाँहों की लहरें
अपने ही गिर्द बँध गईं
कुनमुना कर शिथिल-सी
ठण्डी पड़ गई उनकी जकड़
तुम नहीं थे न वहाँ

जर्जर गाड़ी

मानसिक दुर्बलताओं की
चक्की में पिसती
जा रही
कामना लिप्त देह
चूर-चूर हो
हवा में उड़ रही है
अस्तित्वहीन हो
अपना अधिकार खो
अपना सार खो
इच्छाओं की लम्बी सड़क
जीवन की जर्जर गाड़ी
निर्बाध हो लुढ़की जा रही है
जब रुकेगी
तो
एक भयंकर दुर्घटना को
जन्म देकर
क्योंकि
रुकना उसके बस में नहीं
और सड़क पर
उसका एकमात्र
आधियत्य नहीं

किसे दूँ आवाज़

किसे दूँ आवाज़
कि मेरे साथ बहे
हवाओं-सा
कि मेरे साथ चले
राहों-सा
और डट कर खड़ा हो जाए
मेरे साथ पहाड़ों-सा
किसे कहूँ अपना
जो समेट ले बाहों में
दिशाओं-सा
किसे प्यार करूँ इतना
कि डूब जाए समुद्र
किस पर विश्वास करूँ इतना
कि छोटी पड़ जाए धरती
किस ऊँचाई को ताकूँ
कि हिमालय भी लगे बौना
किन रँगों से सजूँ-सँवरूँ
कि लजा जाए
इन्द्रधनुष
नेह की किस सुई से सिलूँ

कि चाक-चाक रिश्ता
कपड़े सा जाए सिल
चाहत के किस गणित से जोड़ूँ
कि घटा हुआ मन
अँकों-सा बढ़ जाए
शिद्दत के किस साँचे में ढालूँ
कि टूटा हुआ मन
पानी-सा जुड़ जाए
प्यार की कौन-सी धुन छेड़ूँ
कि तेरे सरगम का 'स'
मेरे 'सरगम' के 'म' को
हवा-सा छू जाए
किस अन्दाज़ से दूँ आवाज़
कि तू और मैं
चल दें एक साथ!

प्यार के दो गीत चुप-चुप

प्यार के दो गीत चुप-चुप
आज गा लूँ तो चलूँ मैं
कल्पना के तार-कंपित
को बजा लूँ तो चलूँ मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

शून्य मन है साधना की
ज्योति कब से बुझ चुकी है
लगन की लौ से इसे अब
फिर जगा लूँ तो चलूँ मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

मूक जग है मूक नभ है
मूक हैं दिशि और सितारे
साँझ बंशी पर निशा के
राग गा लूँ तो चलूँ मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

जिन्दगी की राह लम्बी
मौत हर पल पर अड़ी है
दो कदम बस और बढ़ लूँ
लक्ष्य पा लूँ तो चलूँ मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

डबडबाये नयन तेरे
लड़खड़ाये कदम मेरे
आँसुओं के तरल विष को
पी जरा लूँ तो चलू मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

कल्पना थे सत्य थे या
इन्द्रधनु थे या तृषा थे
आज छू कर भ्रम मिटा लूँ
प्यार पा लूं तो चलूं मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

अलविदा की इस घड़ी में
चिर-मिलन के गीत गा लूँ
प्रीत की बुझती शिखा को
फिर जला लूँ तो चलूँ मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

एक पल तो और रुक जा

ओ हठीली-मौत मेरी
जिन्दगी के रिक्त पथ को
फिर सजा लूँ तो चलूँ मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

प्यास प्यासी ही रही है
आस मरु में ही बही है
तृप्ति के दो घूँट पी कर
कुछ बुझा लूँ तो चलूँ मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

कौन जाने किन क्षणों में
जिन्दगी ने मौत माँगी
मौत के ठंडे लबों पे
गीत गा लूँ तो चलूँ मैं

गीत गा लूँ तो चलूँ मैं!

महक

घर की दीवारों को लीप दो
ताकि तुम्हारी गंध खत्म हो जाए!
किसी जंगली फूल की महक से ही
भर जाने दो घर
ताकि
खालीपन का अहसास न खटके
एकाकीपन दूर हो जाए!

कितनी गँधों को उठाकर
लाती रही है हवा
जीवन के कमरे में
और घोलती रही है रँगों का मिश्रण
गँधों से सींचकर।
पर
कभी-कभी
मौलश्री की गँध
तेज़ गँध
घेर लेती थी/जकड़ लेती थी जो
वह आज खत्म हो गई।

पुटूस की गँध ही
भर जाने दो बस
कमरे में
पलास का रस चू जाने दो बस
सपनों में
यह जंगली महक ही
मेरी अपनी रहेगी
क्योंकि वह भी मेरी तरह
अकेली है।

आज महक को मिटता देख
मेरा मन भर आता है
इसलिए
कमरे के द्वार भी खोल दिए हैं
चलो
उड़ जाने दो
जिसे उड़ना है
रह जाने दो
बस एक महक
मेरी अपनी ही देह की
जो मंद पड़ जाती थी
अबतक
महक के तीव्र झोकों से।

खूँटे

समर्पित उसे
जिसने मुझे 'मैं' बना दिया।
जो अनाम था
पर 'नाम' बन गया।
समर्पित उन खूँटों को
जिन्होंने कभी मुझे बाँधा था
पर जिनसे मैंने पगहे तुड़ा लिये
क्योंकि खूँटों से बँधना मेरी आदत न थी।
या खूँटे ही उखड़ गए
क्योंकि मुझे बाँधने की उनमें क्षमता न थी।

समर्पित उसे
जिसने आकाश बन
मुझे घेरने का प्रयास किया
और मुझे धरती बना दिया।

समर्पित उसे
जिसने प्यार के अँबारों का ढेर लगा दिया
लेकिन उनके गिर्द घूम
उन्हें छोटा नहीं किया।

समर्पित उस घोंसले को
जो मुझे समा न पाया।
उस उड़ान को
जो मेरे इरादों से छोटी पड़ गयी

समर्पित उन दूरियों को जिन्हें मैं लौटाती रही।

समर्पित उन प्रेरणाओं को
आसंगो को ग्रंथियों को उलझनों को
जिनसे जूझने में
मैं जिंदगी के कफन
को कवच सा
ओढ़ती रही।

समर्पित उस रमणिका को
जिसने मुझे 'रमणिका' बना दिया।

अर्द्ध-नारीश्वर

तुम भी आखिर पुरुष ही निकले न!
मेरी नारी को ही खोजा
मुझे साथी नहीं माना
प्यार ही टटोला मेरी पुतलियों में
जो तुम्हारी प्यास बुझा सके
उस 'चिनगी' को नहीं परखा
जो मशाल बन
तुम्हें रास्ता दिखाने को
सक्षम है

तुम
नारी की स्वतंत्रता की बात
इतनी ज़ोर से करते हो
कि उसकी आवाज़ ही दब जाती है
उसकी नहीं सुनते
केवल अपनी ही कहते हो

तुम
उसकी स्वतंत्रता की हामी भरते हो
उसे बैसाखियों पर ही चलने देना चाहते हो

क्योंकि उसे लंगड़ाता देख
उसकी बेढब चाल पर
तुम्हें शर्म आती है
उसके कुरूप रूप से तुम सकुचा जाते हो
पर
जानते नहीं क्या?
कुरूपता में भी एक रूप है
आकर्षण है

तुम
मेरे शरीर को भोग्य ही मानते हो
सार्थक नहीं
उपयोगी नहीं
इसलिए
जब तुम मिलते हो
जल्दीबाजी में होते हो
बस शरीर को ही देखते हो
छूते हो
परखते हो
मेरी आत्मा को नहीं
सूझ को नहीं
विवेक को नहीं
इसलिए मैं तुमसे दूर हट जाती हूँ
झटककर तुम्हारी निगाहों को
छिटक जाती हूँ
क्योंकि मैं
अपने को
किसी का कलेवा
नहीं मान सकती
मैं
मैं हूँ

एक सार्थकता
राजनैतिक चेतना
आर्थिक आवश्यकता
बौद्धिक जरूरत
सामाजिक अनिवार्यता
सांस्कृतिक प्रतिबद्धता
और हूँ-अर्द्ध-नारीश्वर का शिव
एक साथी
एक मानव
अखाड़े से भागनेवाली
पार्वती नहीं
घूरती नज़रें
गुलाम बनाती नज़रे
मुझे बेहद नागवार हैं
इसलिए तुम अपनी नज़रें हटा लो
मुझ पर से
या अपना दृष्टिकोण बदल लो
नहीं तो प्यार के बदले कहीं मुझे
तुमसे घृणा न हो जाए।

कीलें

मैं
प्रतिबंधों की चौखट पर खड़ी
समय की दहलीज़
लाँघकर
परम्परा के किवाड़ों से
निषेध की
कीलें उखाड़ रही थी
कि
दरवाज़ा
बेबसी की चरमराहट से टूटने लगा।
दरारें पड़ गयीं-समय की।
झाँका तो वे हाथ फैलाए खड़े थे।
मैं सकपका गई, अकबका गई
और जल्दी-जल्दी
कीलें बटोरकर
फिर जोड़ने लगी
पर सदियों से लगी कीलें
जो उखड़ी थीं
अब अँटती न थीं दरवाज़ों में
समय गुज़र गया था न बीच में
रूढ़ि टूटी थी न

आदम की पसली

(1)
मैं ही उसे राजा बनाती हूँ
और बनती हूँ उसकी रानी
यहीं से शुरू होती है
मेरी गुलामी की दास्तान
और हार के इकरार की कहानी।

खुदा ने 'मुझे' आदम की पसली से गढ़ा था
यही अहसास जकड़े है सदियों से मुझे
और हीनता का फँदा
बंध गया है मेरे गले में
जो खींचने पर
और कसता चला जाता है
दम घोंटता रहता है
और शायद घोंटता रहेगा

यह अहसास
मुझे आश्रित कर देता है उसी पर
और मैं उसे सुरक्षा का साधन मान
सपनों का साध्य जान

अपने अस्तित्व का गला घोंटने पर
उतारू होती रही हूँ सदियों से
और शायद होती भी रहूँ सदियों तक

(2)
इतिहास ने पुरुष के सौंदर्य को नहीं
उसके 'हरक्यूलस' रूप को पहचाना
रीछ को भी प्रेमी माना
और शहजादी उसी रीछ से प्रेम करने लगी।
पर पुरुष ने
मुझ में खोजा
ट्राय की हेलन का सौंदर्य
क्लियोपैट्रा का रूप
रति की नफ ासत
अनारकली का कौमार्य
अहल्या का धैर्य
जिनके रूप से ही तराजू के पलड़े झुक जाएँ।
इतना झुक जाएँ
कि उन्हें उठाने के लिए
फिर किसी पुरुष का ही सहारा लेना पड़े।

(3)
कहते हैं
मेरे पिता ब्रह्मा ने
मेरे रूप-यौवन से आकर्षित हो
मुझी से ब्याह रचा लिया था।
बस
शास्त्र मुझे 'माया' कहने लगे
और पिता चूंकि पुरुष था
वह ब्रह्म ही बना रह गया।
सृष्टि की सर्जना की अनिवार्यता से

पुत्री-संभोग की संभावना को
सब ने स्वीकार लिया
पिता की मानसिक दुर्बलता को भी
किसी ने नहीं दुत्कारा।
मुझी पर उसे आकर्षित करने का
दोष भी लादा
और आज
ऋषि-मुनी गाते हैं
'माया से बचो
यह छलना है
ठगनी है
कंचना है
दूर रहो!'

(4)
'मैं'
पैदा होते ही मर जाती हूँ
सबके चेहरे उदास
मन मुरझा जाते हैं
मेरी माँ
जन्मते ही मेरा गला घोंट देती है
मेरा पिता
कफ़न में बाँध मुझे जंगल में
दफ़ना देता है
मेरे भाई कानाफूसी करते हैं
कोई सुन न ले
बहन जन्मी है
चूंकि बेटी का जन्मना
बुरा है
पाप है
बोझ है।

(5)
पैदा होते ही
मेरी 'मैं' मर जाती है।
और रह जाती है एक लाश
एक औरत।
पुत्री से बहन और बहू तक की यात्रा तय कर
माँ की मंजिल पर पहुँचते-पहुँचते
मैं कई बार मर लेती हूँ
और किसी-न-किसी के कँधे पर
ढोयी जाती रही हूँ।

(6)
पर
अब मैंने जीने का फैसला कर लिया है
मैं मरूँगी भी नहीं।
न ही किसी को अपना गला घोंटने दूँगी
और न ही जिंदा रहने का
अहसास मानूँगी।
किसी का बोझ नहीं बनूँगी
चूंकि मैं स्वयं बोझ बर्दाश्त करने की क्षमता रखती हूँ।
मै सृष्टि की सर्जना की बराबर की
साझीदार हूँ
समान हिस्सेदार हूँ।
मैं भी अपना हक रखती हूँ
अधिकार रखती हूँ
सृजन को रूप देने का
सृष्टि को दृष्टि देने का
समय को दिशा देने का।

बंदीगृह

(1)
हम जब साथ होते हैं
तो टकराते हैं इक-दूजे से
तेज़ धाराओं में बहते-बहते
कभी पास आते
कभी दूर जाते

जब
हम अलग हो जाते हैं
तो
बंदीगृह की बाहरी दीवारों से सटे
सींखचों को बाहर से पकड़े
आज़ादी की ढलान पर
ढुलकने लगते हैं

बंदीगृह की सुरक्षा का मोह?
रूक जाते हैं
भागते पाँव
फिसलती ढलान पर

मगर
एक दिन यह मोह टूटेगा
खरोंचों के दर्द
मुट्ठियों में बंद कर
गिरने का आघात
पाँव में समेट कर
फिसलते हुए उतर जाएँगे हम
सीलन से भीगी दीवार
आज़ादी की धरती पर
अपनी जड़ें
उगा देंगे
जमा देंगे।

(2)
जब मैं तुम्हारे साथ होती हूँ
तो बंदीगृह के भीतर
खेले जा रहे नाटक में
पात्रों के साथ
हँसते-हँसते
लोट-पोट होती मैं
भूल जाती हूँ कि
मैं बंदी हूँ
और वह नाटक

जब मैं अलग होती हूँ तुमसे
लगता है
मुक्त हो गयी बंदीगृह से
फिर भी
बंदीगृह के भीतर पता नहीं क्यों
हो जाती हूँ बंद
तुम्हारी बाँहों की बेड़ियाँ

मुझे बाँध लेती हैं
खड़ी हो जाती हैं दीवारों-सी
मुझे घेरकर।
रुक जाते हैं मेरे पाँव खुद-ब-खुद
मैं आजाद होना नहीं चाहती।

एक क्षीण-सा आवरण उत्तेजना का
मेरी नज़रों में
तैर जाता है
जो दूर-सुदूर आज़ाद मैदानों, वीरानों को
धुंधुला देता है
मैं
देख नहीं पाती
या नहीं चाहती देखना या
महसूसना
आज़ादी से फलाँगते हिरणों जैसे
अहसास को
रह जाती हूँ बँदीगृह में बँद

यह कारागार प्यार का है
या उन्माद का?
नहीं जानती भेद
पर बंद रहती हूँ मैं
अपने-आप में
अपने-आप से

(3)
मैं जब तुमसे अलग होती हूँ
लगता है
मुक्त हो गयी
आज़ाद हो गयी।

पर
थोड़ी देर बाद
सींखचों का आकर्षण
बन्द दरवाज़ों का मोह
मुझे खींच ले जाता है तुम्हारे पास
मैं बँध जाती हूँ
तुम्हारे आवेश भरे आगोश में

मैं
सुरक्षा की बेड़ियाँ पहन लेती हूँ
खुद ही
याद ही नहीं रहती आज़ादी

फिर
दूर हो जाती हूँ जब
उस घुटन से भागने के लिए दूर
छटपटाती हूँ परकटे कबूतर-सी
पर
चुप हो जाती हूँ
अगले ही क्षण तुम्हें देख

पर एक दिन
मेरे पर जरूर उगेंगे फिर से
उड़ने लगूँगी मैं।

तब तुम क्या कर लोगे

तुम मुझे काट सकते हो
कर सकते हो दो फाँक
मगर छीन नहीं सकते
मुझसे
मेरी दिशाएँ
मेरा उत्तर-दक्खिन, पूरब-पच्छिम

चाहें जितने टुकड़े कर दो
जितनी भी फाँकों में दो बाँट
टुकड़े-टुकड़े कर
उत्तर-दक्खिन, पूरब-पच्छिम
हो जाएगा अपना-अपना

तब?
तब तुम क्या कर लोगे?

अभिजात और औरत

तीर, तलवार, त्रिशूल के सहारे
फैलता धर्म
भय के बल
धर्म का
पालन करवाने वालों की जमात
नियम गढ़ने और मनवाने वालों की जमात से
जन्मे अभिजात
धर्म के संरक्षण में पनपे अभिजात
दुष्कर मूल्य उगे
राजनीति उनकी दासी
अपने लिये अभिजात ने
कर लिये सुरक्षित फूल
औरत इनकी सम्पदा
इनकी ज़र-आबरू-उपयोगी वस्तु

धर्म और अभिजात इक-दूजे के पूरक
पर दोनों में टक्कर
दोनों में गठबन्धन
सझौता भी
शीतयुद्ध वर्चस्व का
भीतर ही भीतर चलता

कभी धर्म का पलड़ा उठ जाता
कभी अभिजात का
पर दोनों की नज़र में आदमी बेकार था
गौण था, हीन था, अधिकार-विहीन था

अभिजात जमात में
कवि, चितेरे, शिल्पी
कलाकार-साहित्यकार
सबने मिल औरत को खूब निख़ारा
सजाया और संवारा
औरत की गुलामी को कहा मर्यादा
हत्या को कुर्बानी,
मौत को मुक्ति
जल जाने को 'सती'
सौन्दर्य को 'माया' 'ठगनी'
उसकी खुद्दारी को कुल्टा-नटनी-कुटनी
न जाने क्या-क्या कहा

औरत को तौला
संपदा के बटखरे से
हीनता के तराजू पर
मर्यादा की डंडी मार
सतीत्व की कसौटी पर परख़ा

उसे रोने की मनाही
हँसना वर्जित
बोली तो लग गए कौमे
पूछी तो
तन गए प्रश्नवाचक
महसूसी तो
उठ खड़े हुए एक साथ सब विस्मयबोधक
उसने तर्क दिया

तो पूर्ण विराम के दंड अड़ गए
ज्ञान उसके लिए वर्जित
इसलिए किताबें कर दीं बँद
उसकी पहुँच के बाहर

वह
केवल शृंगार की पात्रा
भोग्य
देवी के रूप में दासी
न बोलने वाली गुड़िया
बस सिर हिलाती कठपुतली
किसी अदृश्य डोर से बँधी
पिता-पति, भाई-पुत्र में बँटी
किसी एक के खूंटे से बँधी
थिरकती सीमा के भीतर
चलती दायरे के भीतर
ठुमकती घर के अन्दर
सोती-उठती-बैठती
न लाँघती परिधि
बन्धन को खुद से
अपने गले में, हाथ में, पाँव में बाँधे
बन्धन को अपना शृंगार-भाग मानती
मानती सुहाग
बंधे पाँव, चलने में असमर्थ,
लड़खड़ाती-लड़खड़ाती
कर गई सदियाँ पार

'किमोनों' से घिरी
गाउन संभालने में व्यस्त
जकड़ी-अकड़ी औरत
कमर करधनी से कसे
चारदीवारी में कैद

मीनारों से ताकती
झरोखों से झाँकती
घूँघट से बाट जोहती
पति के अदृश्य खूँटे से बंधी
चुप्पी साधती
तन्वगी कोमल-कोमल मूर्ति सी औरत
पल-पल में कुम्हलाती औरत
बात-बात में लजाती
लजा कर भाग जाती
औरत
बन गई मूल्यों की प्रतिमूरत
मर्यादा का रूप

तर्क करती
उन्मुक्त हो भागती
हँसती-गाती
ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाती
जी-भरकर
रोती-हँसती-गाती
बतियाती वाचाल औरत
मेहनतकश
मशक्कत के पसीने से लथपथ
आज़ाद औरत
सभ्य औरत के दायरे से
बाहर कर दी गई
सावित्री की, सीता की
'यार्ड-स्टिक' पर
छोटी करार दी गयी
मर्यादा के पलड़े पर
हल्की हो गई
सँस्कारों की कसौटी पर
ठहरा दी गयी पीतल!

बदलाव की कड़ी नहीं

पद्मिनी जल मरी
अहल्या पथराई
सीता धरती में समाई
अनारकली जीते जी
चिना गई दीवार में
सब की सब
पलायन की तस्वीरें
सहन की पथरीली सीमाएँ
पर बदलाव की कड़ी नहीं

सावित्री मौत से टकराई
ऋषि के श्राप के विरुद्ध
पर विद्रोह नहीं किया
श्रापों की परम्परा के खिलाफ
मीरा नाची महलों के बाहर
पति को नकार
गाई 'मेरे तो गिरिधर गोपाल'
खूब रिझाई
पी गई विष
पर नहीं तोड़ पाई 'प्याला'

प्रेम में दीवानी राधा
कृष्ण पथ में लोटती राधा
कृष्ण मंदिरों में
कैद राधा
चौखट में जड़ी-जड़ी
बन गई समपर्ण का 'युग'
पर विद्रोह की 'घड़ी' नहीं

द्रौपदी ने
औरत की अस्मिता के सवाल पर
महाभारत रचाया
दुःशासन के खून से नहाया
व्यवस्था तोड़ने में सिद्धहस्त
अभिमन्यु को गँवाया
पर स्वर्ग-यात्रा में
युधिष्ठिर के पीछे रही
परम्पराएँ तोड़ीं सवाल उठाये,
पर इन्कलाब से जुड़ी नहीं

हाँ
राज़िया ने पहली बार पहल की
आदमी-आदमी की बराबरी कबूल की
गैर-बराबरी के समाज में
गुलाम से ब्याह रचाने की जुर्रत अंजाम दी
अपने ही सामंतों के हाथों
मारी गयी
पर यह व्यक्तिगत विद्रोह था, क्रांति नहीं
सामंती व्यवस्था के खिलाफ
सामंती तरीका
प्रेम का, युद्ध का, कुर्बानी का
पलायन का, सर्मपण का

पर अकेले लड़ाई
संत या सामंत लड़ते हैं
समाज पर असरदार होते हैं
साझीदार नहीं,
पानी में ढेला फेंक
लहरें शान्त होने का करते इन्तज़ार
नहीं उलीचते वे तालाब का पानी
व्यवस्था की घेरेबन्दी
झकझोर कर छोड़ देते
और-और मजबूत होने के लिए
उसे न तोड़ते न बदलते

हुजूम को, समाज को
इतिहास की इन
इक्की-दुक्की कतारों से जोड़ो
तब होगा परिवर्तन
परिवर्तन की लड़ाई अकेले नहीं
पूरी जमात लड़ा करती है!

मैंने तोड़ी है सदियों से सीखी चुप्पी

मैं आजाद होना चाहती हूँ
इसका अर्थ यह तो नहीं, मैं तुमसे मुक्त होना चाहती हूँ
न ही आजाद होने का अर्थ है तुम्हारे प्यार से मुक्त होना
मैं तो बस
प्यार करने की हकदार होना चाहती हूँ
खुद प्यार करना चाहती हूँ

मैंने कब नकारे हैं रिश्ते?
कब तोड़े हैं नेह के धागे?
मैंने तो तोड़ी है सदियों से सीखी चुप्पी
पूछा है गार्गी का सवाल, माँगा है तर्क का जवाब
इसका यह अर्थ तो नहीं कि तुम दे दो मुझे शाप
कि भंग हो गया है आस्था का कौमार्य
कि टूट गया है विश्वास का पुंसत्व
रिश्ता कहीं बेड़ी न बन जाए
मैं तो बस
बाखबर होशियार रहना चाहती हूँ
जवाब पाने की हकदार होना चाहती हूँ
शापों की शृंखला का बहिष्कार करना चाहती हूँ!

---

*11.11.96 सी. एम. डी. कार्यालय, रांची में बैठे-बैठे

मैं आजाद हुई हूँ

खिड़कियाँ खोल दो
शीशे के रंग भी मिटा दो
परदे हटा दो
हवा आने दो
धूप भर जाने दो
दरवाज़ा खुल जाने दो

मैं आजाद हुई हूँ

सूरज आ गया है मेरे कमरे में
अँधेरा मेरे पलंग के नीचे छिपते-छिपते
पकड़ा गया है
धक्के लगाकर बाहर कर दिया गया है उसे
धूप से तार-तार हो गया है वह
मेरे बिस्तर की चादर बहुत मुचक गई है
बदल दो इसे
मेरी मुक्ति के स्वागत में
अकेलेपन के अभिनन्दन में

मैं आजाद हुई हूँ

गुलाब की लताएँ
जो डर से बाहर-बाहर लटकी थीं
खिड़की के छज्जे के ऊपर
उचक-उचक कर खिड़की के भीतर
देखने की कोशिश में हैं
कुछ बदल-सा गया है

सहमे-सहमे हवा के झोंके
बन्द खिड़कियों से टकरा कर लौट जाते थे
अब दबे पाँव
कमरे के अन्दर ताक-झाँक कर रहे हैं

हाँ! डरो मत! आओ न!
भीतर चले आओ तुम
अब तुम पर कोई खिड़कियाँ
बन्द करने वाला नहीं है
अब मैं अपने वश में हूँ
किसी और के नहीं
इसलिए रुको मत

मैं आजाद हुई हूँ

कई दिनों से घर के बाहर
बच्चों ने आना बन्द कर दिया था
मुझे भी उनकी चिल्लाहट सुने
लगता था युग बीत गया
आज अचानक खिड़कियाँ खुलीं देख
दरवाज़े खुले देख
शीशों पर मिटे रंग
और परदे हटे देख
वे भौंचक-से फुसफसा रहे हैं
कमरे की दीवार से सटे-सटे

ज़ोर से बोलो न
चिल्लाओ न जी भर कर
नहीं
मैं कोई परदेश से नहीं लौटी हूँ
नई नहीं हूँ मै इस घर में
बरसों से रहती हूँ
खो गई थी किसी में
आज अपने आपको मिल गई हूँ

अपनी आवाज़
और अपनी बोली भी भूल गई थी
सुनना भी भूल गई थी
सुनाना भी
अब सुनने लगी हूँ
इसलिए खूब बोलो
दीवारों से सटकर नहीं
खिड़कियों से झाँक कर
हँसकर चिल्लाओ
कोई तुम्हें रोकने वाला नहीं है

मैं आजाद हुई हूँ

अब आजाद हैं सभी
मेरा बेडरूम भी
जो एक बन्दी-गृह बन गया था
बन्द हो गया था तहख़ाने की तरह
तिलस्म के जादू के
ताले पड़ गए थे जिस पर
आज खुल गया है

मैं आजाद हुई हूँ!